श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष–१७ अक्टूबर–१९९८ अंक–१०

रामकृष्ण निलयम्,
जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

# विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१७१. श्री धनालाल अमृतलाल गोलकी, कलवामी
१७२. डॉ० कमलाकांत, बड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. मनोष चोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजीभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एन० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडंकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एम० पी० त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चौरड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची (बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(मं० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलांग (अरु० प्र०)
१९२. श्री घनश्याम चन्द्राकर, औंधी (मं० प्र०)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (मं० प्र०)
१९४. स्वामी चिरन्तनानन्द, रा.कृ.मि नरोत्तमनगर (अ.प्र.)
१९५. श्री हरवंश लाल पहंडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९६. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक विहार (दिल्ली)
१९७. डॉ० अखिलेश अग्रवाल—रुड़की, (उ० प्र०)
१९८. श्री अनिल कु० पूनम चन्द जैन—नागपुर (महा०)
१९९. डॉ० शीला जैन—बीकानेर (राजस्थान)
२००. श्री डी० एन० देशमुख—चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)
२०१. श्री योगेश कुमार थलिया—नवलगढ़ (राजस्थान)
२०२. रामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम—अम्बिकापुर (म.प्र.)
२०३. श्री ओम भक्त बुदाथोकी—डाँग (नेपाल)
२०४. श्री ए० डी० भट्टाचार्य—भद्रकाली (प० बं०)

# इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो ।

# विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१७ अक्टूबर—१९९८ अंक—१०

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'।।

सम्पादक ।
डा० केदारनाथ लाभ
सहायक सम्पादक :
ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
( बिहार )
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य— ७०० रु०
वार्षिक— ५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से ६५ रु०
एक प्रति— ५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें ।

## श्री रामकृष्ण ने कहा है

( १ )

जिस प्रकार मिट्टी का शरीफा या हाथी देखने पर सचमुच के शरीफा या हाथी की याद आती है, उसी प्रकार ईश्वर की प्रतिमा देखने पर ईश्वर का ही स्मरण होता है ।

( २ )

मछली खानेवाले मछली का सिर और दुम नहीं चाहते, वे बीच का मांसल भाग ही पसन्द करते हैं। हमारे शास्त्रग्रन्थों में जो अति विस्तृत विधि नियमादि हैं उन्हें काट-छाँटकर आधुनिक युगोपयोगी बनाना होगा ।

( ३ )

गीली दियासलाई को तुम कितना भी घिसो, वह नहीं जलती, पर सूखी दियासलाई एक बार घिसते ही तुरन्त जल जाती है। सच्चे भक्त का मन सूखी दियासलाई के समान हाता है, थोड़ा ईश्वर का नाम सुनते ही उसमे प्रेम-भक्ति की ज्योति जल उठती है, परन्तु संसारी व्यक्ति का मन गीली दियासलाई की भांति काम-काचन की आसक्ति में भींगा होता है; उसे ईश्वर की महिमा कितनी भी सुनाई जाए, उसमें भगवद्भक्ति की वह्नि नहीं सुलगाई जा सकती ।

( ४ )

दीपक के नीचे अँधेरा ही रहता है, उसका प्रकाश दूर में पड़ता है। साधु महात्माओं को उनके पास के लोग नहीं समझ पाते, दूर के लोग उनके भाव से मुग्ध होते हैं ।

# पावन कर दो !

—डॉ० केदारनाथ लाभ

इन नयनों को पावन कर दो !
अमल अकाम सुहावन कर दो !

आँखों में भर काम - हुताशन
देखे दृश्य बहुत मन - भावन
दृग की मृग - मरीचिका हर अत्र
जीवन को चन्दन - वन कर दो !

अपने बुने जाल में फँसकर
मकड़े - सा रह गया लटक कर
भोग - पंक में धँसा कंठभर
लो उबार, प्रक्षालन कर दो !

रही न यौवन की अरुणाई
गयी न तृष्णा की तरुणाई
अँगड़ाई ले रही लालसा
कंचन - काम - मुक्त मन कर दो !

मेटो मन की अमिट वासना
साँस - साँस हो अब उपासना
शब्द - शब्द बन जाय प्रार्थना
जीवन को वृन्दावन कर दो !

रामकृष्ण के पावन पद - तल
बन जाएँ मेरे शरणस्थल
अहं - शिला को गला नाथ निज
करुणा का जल - प्लावन कर दो !
इन नयनों को पावन कर दो !

# आध्यात्मिक अनुभूति की सत्यता (१)

—स्वामी यतीश्वरानन्द

अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

सम्पादक, वेदान्त केसरी, चेन्नई

## आधुनिक संशय

जब हम आध्यात्मिक अनुभूति के बारे में सोचते हैं तो यह प्रश्न उठता है : क्या ये अनुभूतियाँ सत्य हैं ? "मैं न्यूयार्क के एक पादरी को जानता था। एक दिन जब उसने अपनी कन्या से किसी आध्यात्मिक विषय के बारे में कहा, तो उसने अचम्भित होकर पूछा, "पिताजी क्या यह सत्य है, या आप केवल उपदेश दे रहे हैं ?" हम कई प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूतियों के बारे में सुनते हैं और हमें सदा हैरानी होती है कि क्या ये सत्य हैं ?

कुछ ऐसे संशयवादी होते हैं जो सभी बातों को तर्क द्वारा उड़ा देना चाहते हैं। ऐसे यथार्थवादी भी हैं जो यह मानते हैं कि ये सारी अनुभूतियाँ अत्यधिक उत्तेजित स्नायुओं के कारण होती हैं। विलियम जेम्स इनमें से कुछ को Medical materialists या आयुर्विज्ञानिक-भौतिकवादी कहा करते थे। इनमें से एक ने एक महान साधक के बारे में कहा कि उसे इसलिये दर्शन होते थे, क्योंकि उसमें यौन-विकार था; दूसरे की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हिस्टीरिया रोग के कारण थीं। उसके अनुसार केवल एक मानसिक रोगग्रस्त व्यक्ति ही संसार की रीत से अपने को अलग करके चेतना के भिन्न स्तर तक पहुँचना चाहता है।

जब श्रीरामकृष्ण कठोर साधना कर रहे थे, तब बहुत से लोग उन्हें मनोविकारग्रस्त समझते थे। अपने अनेक गुरुओं में से एक, भैरवी ब्राह्मणी से मुलाकात होने पर उन्होंने लोगों की उनके बारे में मान्यता के बारे में उनसे कहा। इसके उत्तर में ब्राह्मणी ने, जो स्वयं एक उन्नत साधिका थीं, कहा, 'सुनो, संसार में प्रत्येक व्यक्ति किसी वस्तु के लिए पागल है। अन्तर केवल इतना है कि तुम भगवान के लिये पागल हो। अन्य लोग सांसारिक वस्तुओं के लिये पागल हैं। (देखिये, श्रीरामकृष्ण लीलाप्रसंग)

हिस्टीरिया से ग्रस्त रोगी और एक सच्चे साधक के बीच, जिसने एक नयी दृष्टि, एक दिव्य-दृष्टि प्राप्त की है, बड़ा अन्तर है। प्रोफेसर विलियम जेम्स अपनी पुस्तक Varieties of Religious experience (वेराईटीस आफ रिलीजियस एक्सपीरियन्स) में बताते हैं कि सच्ची धार्मिक अनुभूतियाँ हमारे सामान्य जीवन से गहरे चेतन धरातल से पैदा होते हैं। उनका कथन है कि योगाभ्यास के द्वारा अलौकिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त की जा सकती है। (विलियम जेम्सकृत वेरायटीस् आफ रिलीजियस एक्सपीरियन्स, न्यूयार्क माडर्न लायब्रेरी, रेन्डम हाउस, पृ० 72, 391, 418, 478) योग हमारे चेतन मन का अतिचेतन के साथ संयोग करने में सहायक होता है। योगी स्थूल देह से सम्बन्धित जीवन की बाधाओं को अतिक्रमण करना जानता है तथा वह एक ऐसी अवस्था में प्रवेश करता है जिसमें वह परमात्मा का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करता है।

वैज्ञानिकों का धार्मिक आदर्शों के प्रति विरोध

रह रहा है। ऐसे आधुनिक वैज्ञानिक हैं, जो आध्यात्मिक अनुभूतियों के एक स्तर को स्वीकार करने लगते हैं जिसका अंकन प्रयोगशाला की सामान्य पद्धति से नहीं किया जा सकता। बहुत से वैज्ञानिकों ने अनुभव-मूलक विज्ञान की सीमाओं का अनुभव किया है तथा वे इन्द्रियातीत सत्य का ज्ञान प्राप्त करने के उपायों की खोज में लगे हैं। विश्व के महान अनुभूति-संपन्न-सन्तों की रचनाओं में नवीन रुचि पैदा हुई है। विश्व के धर्मों के अनुभूति-संपन्न साधकों की अनुभूतियाँ इतनी अधिक प्रामाणिक हैं कि उन्हें आसानी से मनोकल्पना कह कर नकारा नहीं जा सकता।

सदियों से प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों प्रदेशों में अनेक महान ऋषि हो गये हैं। इनमें से कुछ को उच्चतम आध्यात्मिक आलोक प्राप्त हुआ था। परंपरागत धर्म कुछ प्रारंभिक क्रिया-अनुष्ठानों तक ही सीमित रहते हैं। ईसाई धर्म का प्रारम्भिक अनुष्ठान बपतिस्मा है। अब, बपतिस्मा की बहुत सी व्याख्याएँ हैं। एक सम्प्रदाय की मान्यता है कि जब तक व्यक्ति पानी में पूरा नहीं डूबे तबतक उसका त्राण नहीं हो सकता। दूसरा सम्प्रदाय मानता है कि पवित्र जल से कपाल पर क्रास का आकार बनाने से व्यक्ति को उतनी ही पवित्रता का बोध हो सकता है। और दूसरे लोग आन्तरिक पवित्रता पर बल देते हैं, और बाह्य बपतिस्मा की किंचित मात्र आवश्यकता अनुभव नहीं करते। चीन में एक बार एक ईसाई मिशनरी समागम हुआ जिसमें बैप्टिस्ट सम्प्रदाय का एक व्यक्ति बोला, उसके बाद मेथोडिस्ट और अन्त में एक अंग्रेज क्वेकर। एक चीनी ने दूसरे से पूछा, "इनमें से प्रत्येक ईसाई हमें एक पृथक सिद्धान्त बता रहा है। क्या तुम इनका अन्तर मुझे समझा सकते हो?" "मैं नहीं सोचता कि इनमें कोई अन्तर है।" उसके मित्र ने उत्तर दिया, "केवल किसी में बहुत सफाई है, दूसरे में कम सफाई, और किसी में कोई सफाई नहीं है।"

धर्म के बाह्य रूपों के सामान्य भेदों को इतना अधिक महत्व देना धर्मान्धता है, जिसने एक दूसरे के विरोधी नाना सम्प्रदायों की ही सृष्टि की है। सम्प्रदायों के बदले हमें सच्चे साधकों का अवलोकन करना चाहिये जिन्होंने साधना द्वारा चरम सत्य का साक्षात्कार किया है तथा उसे अपने जीवन में उतारा है।

## "महाशय क्या आपने ईश्वर को देखा है?"

एक महाविद्यालयीन छात्र के रूप में नरेन्द्र ने, जो आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द हुआ, ईश्वर में विश्वास खो दिया था। वह अनेक धार्मिक नेताओं के पास गया और उनसे पूछा कि क्या उनमें से किसी ने ईश्वर का साक्षात्कार किया है? अन्त में भाग्य ने उन्हें महान आधुनिक ऋषि और अवतार श्रीरामकृष्ण के निकट लाया। महाविद्यालय के इस युवा छात्र ने सन्त से जो सीधा प्रश्न किया वह था, "महाशय, क्या आपने ईश्वर को देखा है?" क्षण भर भी हिचके बिना तथा सत्य की शक्ति से गूँजते हुए प्रत्येक शब्द के साथ सन्त ने युवक को उत्तर दिया : "हाँ मैंने उसे देखा है, उसी तरह जिस तरह मैं तुम्हें यहाँ देख रहा हूँ, केवल इससे और अधिक स्पष्टतर रूप में।" नरेन्द्र के दूसरी बार आगमन पर श्रीरामकृष्ण ने महान आध्यात्मिक क्षुधा की ज्वाला से व्याकुल और व्यग्र युवक को प्रत्यक्ष आध्यात्मिक अनुभूति का आस्वादन प्रदान कराने का निश्चय किया। श्रीरामकृष्ण के रहस्यमय स्पर्श से शिष्य को तत्काल एक अद्भुत अनुभूति हुई : उसने देखा कि सभी वस्तुओं सहित वह कल चारों ओर घूमता हुआ शून्य में विलीन हो रहा है, जिसमें वह भी लीन होने वाला है। ऐसे अनुभव से अनभिज्ञ

होने के कारण वह चिल्ला उठा, "ओह। आप मुझे यह क्या कर रहे हैं, घर पर मेरे माता पिता है।" श्रीरामकृष्ण मुस्कुराते हुए उसे तत्काल सामान्य चेतना के स्तर पर ले आये।

शीघ्र ही नरेन्द्र श्रीरामकृष्ण के निर्देशानुसार साधना करने लगा और कालान्तर में उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति, निर्विकल्प समाधि सहित असंख्य दर्शन और अनुभूतियाँ लाभ कर धन्य हुआ था। वर्षों बाद स्वामी विवेकानन्द के रूप में उसने अपने अनुयायियों को कहा था: "जिन्हें आत्मा की अनुभूति या ईश्वर साक्षात्कार न हुआ हो, उन्हें यह कहने का क्या अधिकार है कि आत्मा या ईश्वर है? यदि ईश्वर हो तो उसका साक्षात्कार करना होगा; यदि आत्मा नामक कोई चीज हो तो उसको उपलब्धि करनी होगी। अन्यथा विश्वास न करना ही भला। ढोंगी होने से स्पष्टवादी नास्तिक होना अच्छा है। एक ओर आज के विद्वान् कहलाने वाले मनुष्यों के मन का भाव यह है कि धर्म, दर्शन, और एक परम पुरुष का अनुसंधान, यह सब निष्फल है, और दूसरी ओर, जो अर्ध शिक्षित हैं उनका मनोभाव ऐसा जान पड़ता है कि धर्म, दर्शन आदि की वास्तव में कोई बुनियाद नहीं; उनकी इतनी ही उपयोगिता है कि वे संसार के मंगल-साधन की बलशाली प्रेरक शक्तियाँ हैं। यदि लोगों का ईश्वर की सत्ता में विश्वास रहेगा, तो वे सत् और नीतिपरायण बनेंगे और इसीलिए अच्छे नागरिक होंगे। जिनके ऐसे मनोभाव हैं, इसके लिए उनको दोष नहीं दिया जा सकता, क्योंकि धर्म के सम्बन्ध में जो शिक्षा पाते हैं, वह केवल सारशून्य अर्थहीन अनन्त शब्द-समष्टि पर विश्वास मात्र है। उन लोगों से शब्दों पर विश्वास करके रहने के लिए कहा जाता है; क्या ऐसा कोई कभी कर सकता है? यदि मनुष्य द्वारा यह संभव होता, तो मानव-प्रकृति पर मेरी तिल मात्र श्रद्धा न रहती। मनुष्य चाहता है सत्य। वह सत्य का स्वयं अनुभव करना चाहता है; और जब वह सत्य की धारणा कर लेता है, सत्य का साक्षात्कार कर लेता है, हृदय के अन्तरतम प्रदेश में उसका अनुभव कर लेता है, वेद कहते हैं, "तभी उसके सारे सन्देह दूर होते हैं, सारा तमोजाल छिन्न-भिन्न हो जाता है, और सारी वक्रता सीधी हो जाती है।" (मुण्डकोपनिषद् २ : २ : ८) "हे अमृत के पुत्रों, हे दिव्यधाम निवासियों सुनो—मैंने अज्ञानान्धकार से आलोक में जाने का रास्ता पा लिया है। जो समस्त तम से पार है, उसको जानने पर ही वहाँ जाया जा सकता है—मुक्ति का और कोई दूसरा उपाय नहीं।" (श्वेताश्वतरोपनिषद्, २ : ५, ३ : ६)।

## पुस्तकीय ज्ञान पर्याप्त नहीं है:

हम अपनी महान मानसिक अपवित्रता के कारण सत्य का स्पष्ट अवलोकन नहीं कर पाते। हमें अपने मन के मैल को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। दूसरे लोग केवल आवश्यक सुझाव भर दे सकते हैं। लेकिन हमें तदनुसार अपने आचरण का परिवर्तन करना चाहिये।

हमें एक मानसिक दूरबीन प्राप्त करना चाहिये। यह क्षमता हम सभी में प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहती है। यह बाहर से नहीं आती और हमारे स्वभाव में जोड़ी नहीं जा सकती। लेकिन वह एक ऐसी वस्तु है जिसकी हमने इतने वर्षों तक उपेक्षा की है। ज्यों ज्यों हमारा सामान्य मन पवित्र से पवित्रतर होता जाता है, त्यों त्यों हम इसके पीछे विद्यमान बुद्धि या हृदय नामक एक सूक्ष्म आध्यात्मिक मन का आविष्कार करते हैं। उसके प्रकट होने पर एक नयी दृष्टि खुल जाती है। यह "दिव्य चक्षु" है, जिसका उल्लेख गीता के ग्यारहवें अध्याय में किया गया है। आध्यात्मिक

जीवन का अर्थ इस दिव्य चक्षु का विकास है।

हमें कभी यह नहीं सोचना चाहिये कि हम सभी के पास निर्दोष इन्द्रियाँ हैं, तथा इन्द्रियों के माध्यम से हम जो अनुभव करते हैं, यह सत्य और नित्य है। विवेक का प्रथम प्रयोग, ज्ञान का प्रथम प्रकाश हमारे सामने यह प्रकट करता है कि यह संसार निरंतर परिवर्तित हो रहा है, तथा हमें कोई स्थायी शान्ति प्रदान नहीं कर सकता। एक रेडियो संयंत्र असंख्य विद्युत तरंगों को ग्रहण करता है लेकिन हमारी इन्द्रियाँ उनको सीधे अनुभव नहीं कर सकती। इसी तरह हमारा स्थूल मन आत्मा से ईश्वर से निःसृत हो रही सूक्ष्म आध्यात्मिक तरंगों को नहीं जान सकता। लेकिन इस मन के पवित्र, अन्तर्मुखी और एकाग्र होने पर हम अपने भीतर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर जगतों का आविष्कार करते हैं।

केवल पठन, वार्तालाप और अच्छी संवेदना मात्र पर्याप्त नहीं है, और जो लोग पूरी लगन के साथ वास्तविक साधना को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं, उनके लिये किसी और मार्ग में जाना ही बेहतर होगा। वे आध्यात्मिक जीवन में कोई प्रगति कभी नहीं कर सकेंगे। लोग इतने कृपण या दरिद्र बुद्धि होते हैं कि थोड़े से उच्च मनोभाव अथवा विचार के प्राप्त होते ही सोचने लगते हैं कि उन्होंने कुछ महान या महत्वपूर्ण उपलब्धि कर ली है। उन्हें वस्तुतः सच्चे आध्यात्मिक जीवन की, अथवा वह कहाँ से सचमुच प्रारंभ होता है इसकी कोई धारणा ही नहीं होती।

एक धर्म प्रचारक का एक भाई था, जो डाक्टर था। दोनों एक सरीखे दीखते थे। एक दिन एक व्यक्ति ने इनमें से एक को रास्ते में रोक कर उसके अच्छे व्याख्यानों की सफलता पर बधाई दी। उस व्यक्ति ने उत्तर दिया: "मैं प्रवचनकार नहीं हूँ, मैं प्रेक्टिस करने वाला (पेशेवर) हूँ। (यहाँ अंग्रेजी के Practice शब्द पर श्लेष है। अंग्रेजी में Practice का अर्थ डाक्टरी का पेशा तथा आचरण दोनों होता है)। धर्म का उपदेश देना पर्याप्त नहीं है। आध्यात्मिक जीवन के बारे में बातें करना पर्याप्त नहीं है। हमें कुछ वास्तविक साधना करनी चाहिये। अधिकांश लोग साधना से कतराते हैं, लेकिन यदि आध्यात्मिक जीवन हमें हमारे वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार प्रदान न करे, आध्यात्मिक सत्यों का अनुभव करने में हमें सक्षम न बनावे तो उसका क्या अर्थ? बुद्ध के सन्देश, ईसा के सन्देश, श्रीकृष्ण के सन्देश, श्रीरामकृष्ण के सन्देश का अर्थ क्या है? वे हमारे आत्म-साक्षात्कार का मार्ग हमें बताते हैं, लेकिन यदि हम सत्य का अनुभव न करें तो वे हमारे लिए अर्थहीन हैं। आध्यात्मिक परम्परा के अभाव में पश्चिम में ईसा के सन्देश का क्रियान्वयन अब नहीं हो रहा है और केवल बाह्य छिलका भर बचा हुआ है। ईसा को समझने के पूर्व एक ईसाई को ईसा की चेतना की उपलब्धि करनी होगी। बुद्ध को समझने के पूर्व एक बौद्ध व्यक्ति को बुद्ध की चेतना प्राप्त करनी होगी।

(क्रमशः)

---

मनुष्य को, वह जितना नीचे जाता है जाने दो; एक समय ऐसा अवश्य आएगा, जब वह ऊपर उठने का सहारा पाएगा और अपने आप में विश्वास करना सीखेगा। पर हमारे लिए यही अच्छा है कि हम इसे पहले से ही जान लें। अपने आप में विश्वास करना सीखने के लिए हम इस प्रकार के कटु अनुभव क्यों करें?

—स्वामी विवेकानन्द

गतांक से आगे

# रामकृष्ण-विवेकानन्द की दृष्टि में

## सेवा (२)

—ब्रह्मलीन श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज

अनुवादक—डॉ० केदारनाथ लाभ

जीव के उद्धार के लिए ही उनका (श्रीरामकृष्ण का) आगमन हुआ। वे माँ के निकट कातर भाव से प्रार्थना करते हैं: "माँ मुझे बेहोश मत करो, माँ, मुझे ब्रह्मज्ञान नहीं दो।" वे तापितों, पीड़ितों के प्राणों में आशा और आनन्द का संचार करना चाहते हैं। और दूसरी ओर प्लेग-पीड़ितों की सेवा के लिए बेलुड़ मठ को बेच देने में भी स्वामी जी के मन में थोड़ी-सी भी दुविधा नहीं थी। आर्त मनुष्य की सेवा में अपनी सन्तानों को शामिल होते देखकर वे गम्भीर रूप से अभिभूत हो जाते थे। अपने उसी आनन्द की अभिव्यक्ति को उन्होंने कुमारी हेल को लिखित एक पत्र में इस प्रकार व्यक्त किया है—"तुम्हारा हृदय यह देखकर आनन्द से प्रफुल्लित हो जाता कि किस तरह मेरे वत्सगण दुर्भिक्ष, व्याधि और दुःख-कष्ट के बीच में काम कर रहे हैं—हैजे से पीड़ित 'पेरिया' की चटाई के पास बैठे उसकी सेवा कर रहे हैं, और भूखे चाण्डाल को खिला रहे हैं।"

मनुष्य के जीवन में स्थायित्व कितना कम है!—
"आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं
प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः।
लक्ष्मीस्तोय तरंगभंग चपला विद्युच्चलं जीवितं: ॥"
(शिवापराध क्षमापनस्तोत्र, १३)

—प्रतिदिन आयु नष्ट हो रही है और यौवन का क्षय हो रहा है। बीता हुआ दिन फिर लौटकर नहीं आता। काल संसार का भक्षक है और लक्ष्मी (धन-दौलत) जल की तरंग भंग की भाँति चपला है। जीवन विद्युत के समान क्षणभंगुर है।

स्वामी जी ने कहा है: "यह जीवन क्षणभंगुर है, संसार का धन, मान, ऐश्वर्य—सभी क्षणिक हैं। केवल वे ही वास्तविक रूप में जीवित हैं, जो दूसरों के लिए जीते हैं।" स्वामी जी के विचारानुसार, दूसरों को प्रेम करना और दूसरों के दुःख से दुःखित होना एवं दुःख दूर करने के लिए आन्तरिक प्रयास करना—यही वास्तविक मानव धर्म है। स्वामी जी कहते हैं: "क्या तुमलोग मनुष्य को प्रेम करते हो?…दरिद्र, दुःखी, दुर्बल—ये सब क्या तुम्हारे ईश्वर नहीं हैं? पहले उनकी उपासना क्यों नहीं करते हो?" वे कहते हैं "जीव सेवा से बढ़कर और दूसरा कोई धर्म नहीं है।"

आज भी लाखों-लाख व्यक्ति दरिद्रता की मार से जर्जर हो जीवन का अन्त कर देते हैं। भूख नहीं मिटा पाने के कारण माँ अपनी सन्तान की हत्या कर रही है। समाचार पत्र पढ़ने पर नित्य ही उसका करुणापूर्ण वर्णन देखने को मिलता है। हमलोग देखकर भी उसे नहीं देखते, उसके प्रतिकार का प्रयास नहीं करते। यह क्या हमलोगों की आत्म प्रवंचना नहीं है?

हमलोगों की इसी जड़ता को फटकारते हुए स्वामी जी कहते हैं : सबसे बड़ा पाप है यही स्वार्थपरायणता—पहले अपने लाभ के लिए ही सोचना। जो यह सोचता है कि पहले मैं खाऊँगा, दूसरों की अपेक्षा मैं अधिक धनवान होऊँगा, मैं समस्त सम्पदाओं का स्वामी होऊँगा, जो यह सोचता है कि मैं दूसरों से पहले स्वर्ग जाऊँगा, मैं दूसरों से पहले मुक्ति-लाभ करूँगा, वही व्यक्ति स्वार्थपरायण है। स्वार्थ रहित व्यक्ति कहता है—मैं सबके पहले जाना नहीं चाहता, सबके बाद में जाऊँगा। मैं स्वर्ग जाना नहीं चाहता। यदि अपने भाई-बन्धुओं की सहायता करने के लिए नरक जाना पड़े, उसके लिए भी तैयार हूँ।" वास्तविक सेवक को निश्चय ही स्वार्थरहित होना होगा। तभी सेवा पूजा में परिणत होगी एवं सही ढंग से ऐसा कर सकने पर वही हमलोगों की मुक्ति की सीढ़ी होगी। मुक्ति मुष्टिगत होगी। "मुक्तिः करफलायते।" 'सेवा' का अर्थ केवल अनेक लोगों को अन्न-वस्त्र देना नहीं है। सेवा का भाव लेना होगा। यह सेवा केवल दान मात्र नहीं है—यह आत्मोन्नति का मार्ग है, निष्काम कर्मसाधना का क्षेत्र है। इस निष्काम कर्म के फलस्वरूप चित्त शुद्ध होता है तथा श्रीभगवान सर्वत्र ही विराजमान हैं यह हृदयंगम होता है। उन्होंने (भगवान् ने) जो हमलोगों को सेवा का सुयोग प्रदान किया है, यह हमलोगों की परम उपलब्धि है। इसे मन में रखकर कृतज्ञचित्त से अपने अहंकार और स्वार्थ परायणता का त्याग कर यदि मात्र एक दरिद्र व्यक्ति की भी श्रद्धापूर्वक साधारण सेवा की जाय तो इससे भी हमारा जीवन धन्य हो जायगा। शास्त्र कहते हैं—"श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयाऽदेयम्।" —श्रद्धापूर्वक देना होगा, श्रद्धाहीन होकर नहीं। यथार्थ त्याग और सेवा की मानसिकता नहीं रहने पर मनुष्य की सही-सही सेवा नहीं की जा सकती। एक बार पूजनीय शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्द) ने एक व्यक्ति को सेवाकेन्द्र में भेजने के पहले कहा था—"लोगों के द्वारा दिये गये रुपये तू लोगों को देगा, तो फिर तू क्या देगा ?" फिर स्वयं ही उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था—"तू अपना हृदय देगा, प्रेम देगा, प्राण देगा।" अर्थात् कर्म और उपासना का समन्वय करना होगा। जिनके जीवन में यह समन्वय होता है, वे सामान्य मनुष्य नहीं होते, वे होते हैं महापुरुष—सबके वरेण्य।

श्री श्री ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) हमलोगों को वह शक्ति और सामर्थ्य दें जिससे उनके आदर्श को कार्य में परिणत कर हमलोग अपने इस मानव जीवन को सार्थक कर सकें। स्वामी जी ने अपनी पश्चिमी देशों की यात्रा समाप्त कर स्वदेश प्रत्यागमन करने पर अपने देश और मानव जाति के कल्याण में मन वचन और शरीर से अपने आप को उत्सर्ग कर देने का आह्वान किया था। इस उद्देश्य से ही उन्होंने श्रीरामकृष्ण नामांकित 'रामकृष्ण मिशन' की आज से सौ वर्ष पूर्व—१ मई, १८९७ ई०—स्थापना की थी। उन्होंने कहा था—

"ब्रह्म, और परमाणु-कीट तक,<br>
सब भूतों का है आधार<br>
एक प्रेममय, प्रिय,<br>
इन सबके चरणों में दो तन-मन वार।<br>
बहु रूपों से खड़े तुम्हारे आगे, और कहाँ है ईश ?<br>
व्यर्थ खोज ! यह जीव-प्रेम<br>
की ही सेवा पाते जगदीश।"

स्वामी जी के कलकत्ता एवं भारत-प्रत्यागमन की शतवार्षिकी एवं स्वामी जी द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन की शतवार्षिकी में स्वामी जी की यह अमृतवाणी हमलोगों के मन में सदैव जाग्रत रहे। □

# चेतना और ब्रह्मांडविज्ञान

—श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द
परम अध्यक्ष
रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन

[प्रस्तुत लेख रामकृष्ण मठ एवं मिशन के परमाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज के 'प्रेक्टिकल वेदान्त एंड द साइन्स ऑफ वैल्यूज' विषय पर दिये गये भाषण का सार है।

—हिन्दुस्तान टाईम्स, नई दिल्ली के २८ सितम्बर ६८ अंक से साभार लेकर अनूदित हुआ है। अनुवादक हैं —वसन्त विवेक सागर, छपरा (बिहार) —सं०]

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार ब्रह्मांड को केवल जड़ पदार्थ के रूप में नहीं समझा जा सकता—हमें चैतन्य को भी समझना होगा। आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक धीरे-धीरे चेतना के सिद्धांत के महत्व से भिज्ञ हो रहे हैं। ब्रिटिश खगोल-भौतिक विज्ञानी फ्रेड होयल पूर्णतः एक जड़वादी थे, जब उन्होंने चालीस के दशक में अपनी खगोल-विज्ञान पर पुस्तक लिखी। लेकिन, सन् १६८३ में उन्होंने 'द इंटेलिजेंट यूनिवर्स' नामक एक पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने प्रत्ययकारी रूप से यह तर्क किया है कि 'हम अपने अस्तित्व के लिए एक अन्य बुद्धि पर निर्भर हैं, जिसने एक विवेचित योजना के तहत जीवन का निर्माण किया, जो कि किसी भी क्रिया द्वारा उत्पन्न करना संभव नहीं है।

उस पुस्तक में होयल कहते हैं, "यह विज्ञान का बड़ा ही विचित्र पहलू है कि आज तक हम-सब ने जड़ता की चर्चाओं से चेतना को पूर्णतः बाहर रखा है। तथापि हम अपनी चेतना के द्वारा ही सोचते हैं एवं प्रेक्षण करते हैं और यह आश्चर्य-जनक प्रतीत होता है कि जड़ एवं चेतन के बीच कोई पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है। खुद को बाह्य प्रेक्षणकर्त्ता समझने के बजाय, क्वेंटम मेकेनिक्स का कहना है कि हम जो क्रियाएँ अध्ययन कर रहे हैं। हम खुद को उनसे अलग नहीं मान सकते।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थ हैं। एक अमरीकी, रूसी, जापानी, चीनी एवं भारतीय, सम्पूर्ण मानवजाति उन्हें चाहेगी। इस दर्शन को वेदांत ने ब्रह्मांडीय विनियोग के रूप में प्रतिपादित किया है। मैं मानव-उत्थान के लिए मानवता की एक नीति विज्ञान की जरूरत पर-जोर देना चाहूँगा। हम जीव विज्ञान को ऐसा कहते सुनते हैं कि बिना नैतिक मूल्यों के मानवीय क्रमविकास पथ भ्रष्ट हो जाएगा।

होयल आगे कहते हैं, "इस प्रकार खगोल-विज्ञान एवं जीवविज्ञान तथा कुछ भौतिकी के साथ हम धर्म पर पहुँचते हैं। क्या होता है, यदि यह स्थिति बदल दी जाती है और हम विज्ञान को धर्म के दृष्टिकोण से देखते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर धर्मविज्ञान में बदल जाता है। सम-समायिक पश्चिमी मतवाद में, सम्पर्क सूत्र बहुत कम हैं, मुख्यतः इसलिए, क्योंकि उन्होंने ईश्वर को इस ब्रह्मांड से बाहर एक नियन्त्रणकर्त्ता माना है। इसके विषम, भूत एवं वर्त्तमान के अनेक धर्मों ने

देवताओं को मुख्यतः ब्रह्मांड में ही माना गया है। उदाहरण स्वरूप आधुनिक हिन्दू धर्म में भगवान ब्रह्मा के बारे में ऐसी ही सोच है और सदियों पहले नार्दिक एवं यूनानियों के देवताओं के बारे में यह सच था।

यहाँ हम वेदांत की थोड़ी समझ देखते हैं। पश्चिम में गीता एवं उपनिषदों के प्रचार-प्रसार से हम पश्चिमी वैज्ञानिकों के वेदांत के बारे में मतों में बदलाव की आशा कर सकते हैं।

स्वामी विवेकानन्द की वेदान्त के बारे में शिक्षा एक छोटा-सा कथन है "प्रत्येक आत्मा दिव्य है एवं हमारा उद्देश्य उस दिव्यता को व्यक्त करना है। यह बाह्य एवं आन्तरिक स्वभाव पर नियन्त्रण करने से होगा।

यह कार्य, पूजा, आत्मनियन्त्रण एवं दर्शन-शास्त्र में से एक, अधिक या सभी की मदद से कर मुक्त हो जाओ। यह धर्म का सार है। सिद्धांत, अनुष्ठान, मत, ग्रंथादि केवल गौण मात्र हैं।

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को इस प्रकार बनाकर सत्य की एक झलक ले ही सकता है। वह पूर्ण सत्य की अनुभूति नहीं कर पाये तो क्या, एक झलक मात्र भी बहुत कृपा से हो पाती है। सारे नैतिक मूल्य यहीं से जन्म लेते हैं। अन्य जीवों की तरह मानव को भी खुद को जीव नहीं समझना चाहिए। "मैं मुक्त हूँ। मैं मुक्त हूँ।" स्वामीजी कहते हैं "इन शब्दों को बारम्बार बोलो।" मुक्त व्यक्ति कोई गलत कार्य नहीं करते एवं भयभीत भी नहीं होते। वे दूसरों में भी निर्भीकता की भावना प्रबुद्ध करेंगे। वह सर्वोच्च स्थान होता है, जब नैतिकता का विज्ञान, धार्मिकता के विज्ञान में समाविष्ट हो जाता है।

हमने अपने इतिहास में ऐसे अनेक व्यक्ति पैदा किये हैं। मुक्त, निर्भीक एवं दूसरों में निर्भीकता की भावना भरने वाले अनेक महापुरुष हमारे देश में हुए हैं। वर्त्तमान में भी महात्मा गाँधी इसके एक उदाहरण हैं। सोलहवीं एवं सतरहवीं सदी में गुरु नानक देव एवं गुरु गोविन्द सिंह इसके विशिष्ट उदाहरण हैं।

---

हम देखते हैं कि एक तथा दूसरे मनुष्य के बीच अन्तर होने का कारण उसका अपने आप में विश्वास होना और न होना ही है। अपने आप में विश्वास होने से सब कुछ हो सकता है। मैंने अपने जीवन में इसका अनुभव किया हैं, अब भी कर रहा हूँ और जैसे-जैसे में बड़ा होता जा रहा हूँ, मेरा विश्वास और भी दृढ़ होता जा रहा है।

क्या तुम जानते हो, तुम्हारे भीतर अभी भी कितना तेज, कितनी शक्तियाँ छिपी हुई है? क्या कोई वैज्ञानिक भी इन्हें जान सका है? मनुष्य का जन्म हुए लाखों वर्ष हो गये, पर अभी तक उसकी असीम शक्ति का केवल एक अत्यन्त क्षुद्र भाग ही अभिव्यक्त हुआ है। इसलिए तुम्हें यह न कहना चाहिए कि तुम शक्तिहीन हो। तुम क्या जानो कि ऊपर दिखाई देनेवाले पतन की ओट में शक्ति की कितनी सम्भावनाएँ हैं? जो शक्ति तुममें है, उसके बहुत ही कम भाग को तुम जानते हो। तुम्हारे पीछे अनन्त शक्ति और शान्ति का सागर है।

—स्वामी विवेकानन्द

# देवलोक में (१)

—स्वामी निर्वाणानन्द

अनुवादक--श्री अरुण देव भट्टाचार्य

[मूल भाषण का स्थान—वेदान्त सोसाईटी, न्यूयार्क, काल ४ जून १९५६। प्रकाशन—रामकृष्ण संघ की बंगला मासिक पत्रिका उद्‌बोधन का सितम्बर १९६६ अंक]

महाराज के व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य के बारे में हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) कहा करते थे, "महाराज की उपस्थिति से ही ऐसा आध्यात्मिक परिवेश सृष्ट हो जाता है कि समवेत सब लोग अपने-अपने भावों को भूलकर महाराज के भाव से प्रभावित हो जाते हैं। ऐसी विशेष क्षमता महाराज में है।" इस सत्य का साक्षात् अनुभव मैंने भी कई बार किया था। विभिन्न समस्याएँ लेकर लोगों को महाराज के पास आते हुए मैंने देखा था। मुख्यतः मन चंचल है, ईश्वरोपासना सम्भव नहीं है आदि। उनके गम्भीर व्यक्तित्व के सामने बिना प्रश्न किये, वे घंटों बठे रहते थे और अन्त में प्रणाम करके चले जाते थे। उनको देखकर लगता था कि उनकी समस्याएँ अपने आप दूर हो गयी हैं और मानसिक चंचलता का समाधान हो गया है।

सन् १९२१ की बात है। महाराज का काशी अद्वैताश्रम में शुभागमन हुआ था। श्रीरामकृष्ण जन्मोत्सव के शुभ अवसर पर महाराज ने श्रीरामकृष्ण की नयी फोटो की स्थापना कर दी। षोडशोपचार में पूजा, आरती आदि के बाद स्तव पाठ हुआ। महाराज के इच्छानुसार भजन शुरू किया गया जिसमें सब मिलकर गा रहे थे। अचानक महाराज भावावेश में उठकर भजन गाते-गाते नृत्य करने लगे। वहाँ उस समय हरि महाराज, शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्द) और खोका महाराज (स्वामी सुबोधानन्द) भी थे। वे सब खड़े हो गये और महाराज के साथ नृत्य करने लगे। मैं एक कोने में बैठकर हारमोनियम बजा रहा था। वहाँ उस समय साठ-सत्तर साधु और दो तीन सौ भक्त उपस्थित थे। महाराज ने उस समय एक ऐसा परिवेश सृष्ट किया जिससे सब अन्य जगत् में पहुँच गये थे। यहाँ तक कि सात आठ साल के बच्चे भी इस जगत् को भूल गये थे। जब यह आनन्दोत्सव चल रहा था तब एक घटना परिवेश में बाधास्वरूप उपस्थित हुई। एक भक्त ने अचानक महाराज के सामने आकर बोल दिया कि विलम्ब होने पर खाना ठंडा हो जायेगा। उस भक्त को हरि महाराज और अन्य भक्तगणों ने मिलकर खूब डाँटा। हरि महाराज बाद में बोले थे कि महाराज अपनी आध्यात्मिकता सम्पूर्णतः गुप्त रखते हैं। ऐसा अवसर बहुत कम ही मिलता है। उस दिन उन्होंने जो आनन्दमय परिवेश सृष्ट किया था उपस्थित सब लोगों का मन एक उच्च भूमि में पहुँच गया था।

महाराज में स्पर्श करके भावान्तर लाने की विशेष क्षमता भी थी। एक घटना की याद इस प्रसंग में आती है। देबेन्द्रनाथ बसु महाशय ठाकुर के शिष्यों में थे। उनकी परिचय यद्यपि ठाकुर के अन्य सन्तानों के साथ भी थी परन्तु जान पहचान गंगाधर महाराज (स्वामी अखण्डानन्द) से अधिक वे काशीपुर में भी आते जाते रहते थे। ठाकुर के अदर्शन के बाद देबेन बाबू कासिम बाजार

महाराजा के पास मुख्य प्रबन्धक के रूप में काम करते थे। बहुत दिनों के बाद उनकी मुलाकात गंगाधर महाराज से हुई। गंगाधर महाराज उनको पकड़कर मठ में लाये महाराज से मिलने के लिए। देबेनबाबू ने मठ आने पर परम आनन्द प्रकट किया था और बातें करने के बाद चले गये थे। उनके चले जाने के बाद महाराज, गंगाधर महाराज से बोले थे, "तुम्हारे देबेन बाबू को कैसा जो लगा। वे हमें बिलकुल भूल गये हैं। कपड़े जो पहनकर आये थे उससे लगता है कि पूरे बाबू बन गये हैं। हम सबों को पूरे भूल गये हैं।" कुछ दिनों के बाद गंगाधर महाराज, देबेन बाबू से फिर मिल गये और बातों-बातों में महाराज की बात उनको कह दी। देबेन बाबू चुपचाप सुन गये थे। कुछ दिनों के बाद देबेन बाबू पुनः मठ में आये थे। समयकरीब-करीब साढ़े तीन पौने चार का था जब मैं महाराज के कमरे के बाहर के बरामदे में बैठा था। वे महाराज से मिलना चाहते थे। मैंने उनको बताया था बैठने को क्योंकि महाराज का कमरे से बाहर आने का समय हो रहा था। मैंने महाराज को देबेन बाबू की आने की सूचना दे दी थी। महाराज बोले थे उनको बैठाने के लिए और यह देबेन बाबू को बोलने के लिए बोले थे कि कमरे से बाहर वे जल्दी ही आ रहे हैं। मैंने भी वही बात देबेन बाबू को बता दी थी। उनको बैठने के लिए मैं तो पहले ही बता चुका था। परन्तु मैंने आश्चर्य होकर देखा कि वे अत्यन्त चंचल लग रहे थे जैसे मन में कुछ अशान्ति है। मुझको जैसा लगा कि गंगाधर महाराज की बात ने उनको अस्थिर कर दिया है और उनके मन को चोट लगी है। अस्थिरता के कारण वे बैठ नहीं पा रहे थे और दो तीन मिनट बैठ कर ही महाराज के कमरे में घुस गये थे। उनके भीतर आने पर ही महाराज कुर्सी छोड़कर उनके सामने खड़े हो गये थे। देखते ही महाराज समझ गये कि बात क्या है। महाराज उनके सीने को स्पर्श करके बोले, "सोचना क्या, सब ठीक हो जायेगा, चिन्ता मत करिये।" यह मैंने लक्ष्य किया कि महाराज के स्पर्श पाते ही उनके मन और दृष्टि में परिवर्तन आया। उन दोनों के बरामदे में आकर बैठ जाने पर मैंने उनके चाय पानी का आयोजन कर दिया था। उसके बाद वे महाराज को प्रणाम करके चले गये थे।

देवेन्द्र बसु महाशय ने अपने ग्रन्थ "धर्म प्रसंग में स्वामी ब्रह्मानन्द" में महाराज का संक्षिप्त परिचय देते हुए लिखा था कि महाराज विद्युतवाही तार जैसा लगते हैं जिसको स्पर्श करने पर ही उनकी अमोघ शक्ति का परिचय मिलता है। मुझको वे यह भी बोले थे, 'महाराज आध्यात्मिक जगत् में चन्द्र में मीन जैसा खेल रहे हैं। वे वास्तव में एक परम शक्ति मान पुरुष हैं। जिस दिन मैं उनके पास प्रबल अशान्ति लेकर गया था, महाराज ने स्पर्श मात्र से उसको शान्त कर दिया था जबकि मैंने उसके बारे में उनको कुछ बोला ही नहीं था। मेरे सीने पर उनके हाथ के स्पर्श मात्र से मुझमें परिवर्तन सा आ गया था।" इन शब्दों को सुनते ही मुझको अतीत की घटना की याद आ गयी। महाराज की घटनाएँ ठाकुर की अतुलनीय प्रेम की याद दिलाती है और उनकी पुण्यस्मृति की पुनर्जागरण हो जाती है।

महाराज अपनी आध्यात्मिक उपलब्धि की बात कभी कुछ प्रकट नहीं करते थे। श्रीरामकृष्ण के प्रसंग में पूछने पर वे उसे टाल देते थे और बोलते थे कि ठाकुर से प्रार्थना करने पर ही वे अपनी बात अपने आप ही बोल देंगे। वे कभी-कभी स्वामीजी के बारे में कुछ-कुछ बोलते थे। किसी-किसी पत्रिका में जैसे 'इटरनल कम्पानियन' आदि, महाराज को ठाकुर का आध्यात्मिक मानस

पुत्र कहा गया हैं। परन्तु मेरे विचार में महाराज उससे भी कहीं बढ़कर थे। मानस पुत्र कहने से शिष्य और गुरू का ही सम्बन्ध होता है। परन्तु ठाकुर के पास आने के पूर्व से ही महाराज के सम्बन्धमें ठाकुर को कई दर्शन हुए थे। प्रथम दर्शन में ठाकुर ने देखा—गंगा के उपर प्रस्फुटित कमल के ऊपर श्रीकृष्ण और एक बालक को नृत्य करते हुए। महाराज के आते ही ठाकुर पहचान गये थे इस कृष्ण सखा बालक को। उसके बाद ठाकुर ने माँ से प्रार्थना की थी एक शुद्ध सत्त्व त्यागी बालक साथी के लिए। ठाकुर ने देखा था माँ को एक बालक को उनकी गोद में बैठाते हुए उनका बेटा बोलते हुए। ठाकुर तो बेटा शब्द से ही चौंक गये थे जिस पर माँ ने उनको आश्वासन दिया था कि यह बेटा, साधारण संसारी भाव का बेटा नहीं है यह है त्यागी मानसपुत्र। महाराज का ठाकुर के पास आते ही समझ गये थे कि यही वह त्यागी मानसपुत्र है। इन सब को देखकर यही लगता है कि ठाकुर और महाराज का सम्बन्ध गुरु शिष्य से कहीं बढ़कर है।

सन् १९१२ की बात है। दुर्गा पूजा का समय था। संघ जननी सारदा माँ काशी में उपस्थित थीं। माँ इन शुभ उत्सवों के अवसर पर सबको नये कपड़ देती थीं। शरत् महाराज, हरि महाराज, महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द) आदि सन्तानों के लिए लाया गया कपड़े एक तरह का था और महाराज के लिए लाया गया कपड़ा बहतर था—रेशम का था। रासबिहारी महाराज न माँ से इसका कारण पूछा था। माँ ने स्वीकार किया था कि महाराज का कपड़ा विशेष रूप का है क्योंकि वह उनके बेटे के लिए जो है।

और एक घटना भूलना मेरे लिए कठिन है। वह घटना बहुत ही आकर्षक है। मेरे मन में सदा यह जानने का आग्रह था कि ठाकुर और महाराज में असली सम्बन्ध क्या है। बात सन् १९१८ की है। मैं उस समय ठाकुर के साथ बलराम मन्दिर में था। ऊपर के छोटे कमरे में जहाँ अब पूजाघर है, महाराज रहते थे। मैं बाहर के बरामदे में एक बेंच पर बैठा था। दोपहर का समय करीब साढ़े बारह बजा था। वह समय महाराज के खाना खाने के बाद विश्राम का था। इस समय शरत् महाराज ने एक ब्रह्मचारी के साथ एक महिला को महाराज से मिलने के लिए भेजा था। मैं चाहता नहीं था कि विश्राम के समय महाराज को तकलीफ दी जाय। यद्यपि ब्रह्मचारी ने कहा था कि शरत् महाराज ने भेजा है मैंने महाराज को उसका उल्लेख किये बिना ही कहा था कि एक कम उमर की महिला उनको प्रणाम करना चाहती हैं। महाराज ने इसे सीधा मना करके मुझको आगन्तुक महिला से बोलने के लिए कहा कि शाम के चार बजे आने से मुलाकात हो सकती है। महाराज ने यह भी कहा था कि उस उमर में उनको खाना खाने के बाद में बातें करने में असुविधा होती है। मैंने जब कमरे से बाहर आकर कहा तो वह महिला रोने लगी और मुझसे बारम्बार बिनती करती रही कि महाराज को प्रणाम करके ही चली आयेगी। महिला इतना रो रही थी कि मुझसे रहा नहीं गया और मैं पुनः महाराज के कमरे में जाकर बोला कि महिला अत्यधिक रो रही है और बोलती है कि प्रणाम करके ही चली जायेंगी। इस बार मैंने शरत् महाराज द्वारा भेजे जाने की बात महाराज से कही। महाराज मुझसे बोले कि शरत् महाराज द्वारा भेजे जाने की बात मैंने पहले क्यों नहीं कही। महिला को तुरन्त भीतर भेजने को बोले। महिला के साथ-साथ मैं भी कमरे में घुसा था। महिला, महाराज को प्रणाम करके जोरों से रोने लगी थी। महाराज एकदम स्थिर होकर बहुत देर तक बैठे रहे।

महिला रोती जा रही थी और महाराज ने इस पर उनको शान्त करने के लिए पूछा कि किस कारण रो रही है। महाराज के कमरे में ठाकुर का फोटो था। महिला उस फोटो को दिखाते हुए महाराजसे बोली कि उनके निर्देश पर वह महाराज के पास आयी है। इसके बाद मेरा उस कमरे में रहना ठीक नहीं है सोचकर मैं कमरे से बाहर चला गया था। पूरी घटना मैंने महाराज से बाद में सुनी थी। महिला बाल विधवा थी। चौदह की उमर में ही शादी होने के कुछ दिन बाद उनके पति का देहान्त हो गया था। उस समय का विधवा जीवन अत्यन्त भयानक और कष्टदायक था। महिला पति के देहान्त के एक साल बाद महाराज के पास आयी थी। साल भर तक भगवान् से प्रार्थना की थी—आश्रयहीन की सहायता के लिए। महिला ने महाराज को बताया था कि साल भर तक प्रार्थना करते-करते श्रीरामकृष्ण ने दर्शन देकर कहा था कि चिन्ता करने की जरूरत नहीं है और बाग बाजार जाकरके उनके पुत्र से मिलने से ही हो जायेगा। उसके बाद ससुराल से अनुमति लेकर महिला कलकत्ते के टालिगंज में अपनी माँ के पास आकर सारी बातें माँ से कही थी। उसके उपरान्त अपने भाई को साथ लेकर बहुत ढूँढ़ कर बाग बाजार के उद्बोधन में आयी थी और शरत् महाराज से मिली थी। शरत् महाराज ने थोड़ा कुछ सुनकर ही महिला को एक ब्रह्मचारी के साथ महाराज के पास भेज दिया था। मेरा जब महाराज के कमरे में बुलावा आया था तब शाम के तीन बज चुके थे। मैंने भीतर जाकर देखा था कि महिला हँसमुख बैठी थी। उनकी दीक्षा भी हो चुकी थी। महाराज ने उन दोनों को जितनी जल्दी हो सके भोजन करवाने का आदेश दिया था, क्योंकि वे दोनों ही भूखे थे। उस दिन भोजन का आयोजन शीघ्र ही हो गया था। उसके बाद से मैंने उन्हें महाराज के पास आते-जाते देखा था।

(यहां महाराज का अर्थ है स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज)

(अगले अंक में समाप्य)

---

क्या तुम्हें खेद होता है ? क्या तुम्हें इस बात पर कभी खेद होता है कि देवताओं और ऋषियों के लाखो वंशज आज पशुवत् हो गये हैं ? क्या तुम्हें इस बात पर दुःख होता है कि लाखों मनुष्य आज भूख की ज्वाला से तड़प रहे हैं और सदियों से तड़पते रहे हैं ? क्या तुम अनुभव करते हो कि अज्ञानता सघन मेघों की तरह इस देश पर छा गयी है ? क्या इससे तुम छटपटाते हो ? क्या इससे तुम्हारी नींद उचट जाती है ? क्या यह भावना मानो तुम्हारी शिराओं में से वहती हुई, तुम्हारे हृदय की धड़कन के साथ एकरूप होती हुई तुम्हारे रक्त में भिद गयी है ? क्या इसने तुम्हें लगभग पागल सा बना दिया है ? सर्वनाश के दुःख की इस भावना से क्या तुम बेचैन हो ? और क्या इससे तुम अपने नाम, यश, स्त्री-बच्चे, सम्पत्ति और यहाँ तक कि अपने शरीर की सुध-बुध भूल गये हो ? क्या तुम्हें ऐसा हुआ है ?—देशभक्त होने की यही है प्रथम सीढ़ी, केवल प्रथम सीढ़ी।

—स्वामी विवेकानन्द

# काली माता

—स्वामी विवेकानन्द

छिप गये तारे गगन के,
बादलों पर चढ़े बादल
काँपकर गहरा अँधेरा,
गरजते तूफान में, शत
लक्ष पागल प्राण छूटे
जल्द कारागार से द्रुम
जड़ समेत उखाड़कर, हर
बला पथ की साफ करके।
शोर से आ मिला सागर,
शिखर लहरों के पलटते
उठ रहे हैं कृष्ण नभ का
स्पर्श करने के लिए द्रुत,
किरण जैसे अमंगल की
हर तरफ से खोलती है
मृत्यु-छायाएँ सहस्रों,
देहवाली घनी काली।
आधि-व्याधि बिखेरती, ऐ
नाचती पागल हुलसकर
आ, जननि, आ जननि, आ, आ !
नाम है आतंक तेरा,
मृत्यु तेरे श्वास में है,
चरण उठकर सर्वदा को
विश्व एक मिटा रहा है,
समय तू है, सर्वनाशिनि,
आ, जननि, आ, जननि, आ, आ !
साहसी, जो चाहता है
दु:ख, मिल जाना मरण से,
नाश की गति नाचता है,
माँ उसी के पास आयी।

# आध्यात्मिक प्रश्नोत्तरी

# बहनों की आदर्श श्रीमाँ सारदा देवी

—श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न :—नौकरी पेशा वाली बहनें सहिष्णुता, त्याग, सरलता, जैसी श्री माँ शारदा देवी के जीवन में है को कैसे अपना सकती हैं ? और अपने जीवन में कैसे आगे बढ़ सकती हैं ?

उत्तर :—माताजी का जीवन, त्याग का जीवन है। माताजी ने जो कुछ किया, वह त्याग भावना से प्रेरित होकर किया। उनका जीवन चरित्र ध्यान से पढ़ने से हमें पता चलता है कि इस संसार में उन्हें कितने कष्ट सहने पड़े थे। और किस-लिए ? उन्हें कुछ खास आवश्यकता तो थी नहीं, फिर भी दृष्टान्त के लिए उन्होंने ऐसा किया। ऐसी सहनशीलता हममें, खास करके बहनों में न हो तो संसार में अशांति ही बढ़ जाये। अन्यों की सेवा को ही लक्ष्य मानकर माताजी ने कार्य किया। उनके लिए धार्मिक जीवन और सांसारिक जीवन, ये दोनों अलग नहीं थे। वे जो कुछ करते धार्मिक दृष्टि से, संपूर्ण निःस्वार्थ ही होता। ऐसा निःस्वार्थ कार्य, भगवत् चिंतन में बाधक नहीं होता। कार्य में स्वार्थवृत्ति हो तो ही वह भगवत्-चिंतन में विघ्नकर्ता होती है।

इसलिए हमें यह ख्याल रखना चाहिए कि निःस्वार्थ कार्य भगवत्-चितन के लिए प्रतिकूल नहीं है। इसलिए बहनें निःस्वार्थ भाव से सभी कार्य करें। गृह कार्य करें, नौकरी करें, या कुछ भी करें तो भी वह साधना ही मानी जायेगी। स्वार्थ वृत्ति से की गई नौकरी निःसंदेह साधना नहीं है। किन्तु पूर्ण स्वार्थ त्याग से कुछ भी किया जाय, नौकरी, सांसारिक कार्य किये जाये, या फिर किसी वृक्ष के नीचे बैठकर समाधि लगाई जाये, उसमें कुछ फर्क नहीं पड़ता। हमारी स्वार्थ भावना ही हमारे बंधन का कारण है। स्वार्थवृत्ति छोड़ने वाला मुक्त माना जाएगा। मन से बिलकुल स्वार्थवृत्ति त्यागने वाला ही मुक्त है। स्वार्थ माने बंधन और निःस्वार्थता माने मुक्ति ही है। इस दृष्टि से देखने पर माताजी का जीवन बिलकुल निःस्वार्थ है। वे संसार में रहीं, परिवार की परवरिश के लिए उन्होंने कितना त्याग किया। किन्तु यह सबकुछ निःस्वार्थ भाव से हुआ। वे तो ऐसा ही जानती थीं, सभी कार्य में हम ईश्वर की ही सेवा कर रहे हैं। श्री रामकृष्णदेव की कृपा से या जगन्माताजी की खुद की आज्ञा से, वे सर्व आत्मीय परिजनों में, जगत में भी ईश्वर की सत्ता को निहारती थीं।

हमें ऐसा लगे कि कोई सांसारिक कार्यों को करते हुए भी ऐसा करता हो कि मैं तो ईश्वर का कार्य कर रहा हूँ, ऐसा कैसे हो सकता है ? इसे क्या कहें ? उत्तर में, बात ऐसी है प्रत्येक कार्य में दो तरह की दृष्टियों का अस्तित्व होता है। खुद की दृष्टि और दूसरी अन्य की। यदि कोई सांसारिक बुद्धि से, स्वार्थ बुद्धि से प्रेरित होकर कार्य करे, तो उसके कार्य में क्षतियाँ होती हैं; और निःस्वार्थ भाव से काम करेगा तो उसमें कुछ त्रुटी-क्षति-गलती नहीं होती। अर्थात् बाहर से देखनेवाले कार्य की कसौटी जैसे चाहे, वैसे करते हैं। परन्तु निःस्वार्थ भाव से कार्य करनेवाला खुद तो समझता है कि 'मेरा कुछ नहीं है।' "नाहं किंचित्करोमीति

युक्तो मन्यते तत्ववित्" तत्परा पुरुष जो कुछ भी करता है, वह 'मैं कर्ता नहीं हूं' ऐसी बुद्धि से ही करता है। वह ऐसी बुद्धि से क्या क्या करता है, इसके बारे में स्पष्ट कहा कि—'वह कार्य कोई भी करता हो, सांसारिक, शारीरिक या सामाजिक—कुछ भी काम करे, उसमें 'अहंभाव' नहीं होता। यही उसकी मुख्य कसौटी है। यह 'अहंभाव' ही स्वार्थ-परता है। गीताजी में दर्शाया है :

"यत्करोषि यद्श्नासि यज्जुहोषि ददासियत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥"

—'यत् करोषि' तुम जो कुछ भी करो, यहाँ 'कुछ खास कार्य ही ऐसा निश्चित करके नहीं कहा गया, 'यत् करोषि'—चाहे जो कुछ कार्य करो। यह बात समझाते हुए कहते हैं कि यद्श्नासि—तुम जो कुछ खाते पीते हो, 'खाना-पीना' एक सेवा है। भगवान का कार्य है। 'यज्जुहोषि'—जो भी यज्ञादि करो, 'दद सि यत्'—जो कुछ भी दान दो, 'यत् तपस्यसि'—जो कुछ भी तपश्चर्या करो, उनका फल मुझे सौंप दो। अर्थात् 'इससे मुझे कुछ फल मिलेगा' ऐसी बुद्धि न रखकर, जो कुछ भी करना हो वह भगवान को अर्पण करने को कहा है। किसी भी प्रकार का कार्य हो, उसमें 'अर्पणबुद्धि' हो तो कभी भी बंधन नहीं होता। और वह कार्य सभी के लिए कल्याणकारी होता है। आप माताजी का जीवन देखिए! अभी भी वे सभी का कल्याण कर रही हैं! उनके जीवन का चिंतन करने से आज भी "जीवन कैसे जीना चाहिए" यह हम समझ सकते हैं। श्री रामकृष्ण-देव कहते थे : "यहाँ जो कुछ भी होता है, दृष्टान्त के लिए होता है।" माताजी की बाबत भी यही बात लागू होती है। उनका जीवन भी दूसरों को दृष्टान्त देने के लिए ही है, जिससे अन्य लोग उनका अनुकरण करके अपना जीवन धन्य बना ले।

## आत्मा को विज्ञान द्वारा साबित किया जा सकता है?

प्रश्न :—'आत्मा' शब्द आजकल खूब पढ़ने में, सुनने में आता है, लेकिन क्या उसे साबित करने के लिए वैज्ञानिक तर्क (Scientific reason) दे सकते हैं?

उत्तर :—यह एक सुन्दर प्रश्न है। आजकल हमें विज्ञान पर अधिक श्रद्धा है। हम आजकल 'Scientific Proof', 'Science', आदि शब्द बार-बार सुनते हैं। तो अब देखें कि 'Science' सायन्स माने क्या? विज्ञान माने क्या? "किसी चीज को तर्क सिद्ध करके प्रस्तुत करने की पद्धति को 'वैज्ञानिक पद्धति' कहते हैं। 'तर्कसिद्ध' याने जिसकी प्रतिष्ठा तर्क द्वारा हो सके वह। जैसे कि हमें पर्वत पर धुआँ दिखता है, इसलिए हमें लगता है कि धुआँ तो दिखता है लेकिन वहाँ आग है क्या? इसके उत्तर में हम अनुमान करते हैं कि 'वहाँ आग है', आग जरूर होनी चाहिए। क्योंकि जहाँ-जहाँ धुआँ होता है, वहाँ-वहाँ आग तो अवश्य ही होती है, बिना आग के तो धुआँ हो ही नहीं सकता। लेकिन यह प्रश्न तो ऐसा है जिसे हम अपने अनुभव से सिद्ध कर सकते हैं। क्योंकि वह तो अनिवार्य नियम है। एक शाश्वत सत्य है कि जहाँ-जहाँ धुआँ हो वहां-वहाँ आग होती ही है। अपनी इन्द्रियों द्वारा इसे प्रत्यक्ष किया जा सकता है, किन्तु जिन वस्तुओं को इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया जा सकता, उसे भला कैसे साबित किया जाए? विज्ञान का रास्ता तो सिर्फ इन्द्रियप्रत्यक्ष अनुभव पर ही आधार रखता है। परन्तु जो वस्तु प्रत्यक्ष अर्थात् इन्द्रियों का विषय बन ही न सकती हो, उसे विज्ञान प्रकाशित ही नहीं कर सकता। विज्ञान की भी यह "Self-imposed limitation" स्वयं आरोपित सीमा है।

वह खुद ही अपनी विचारधारा पर अंकुश लाद देता है कि हम तो निश्चित सीमा तक ही आ सकते हैं। जहाँ प्रत्यक्ष (Observation) अवलोकन अथवा (Experiment) प्रयोग न हो सके, वहीं विज्ञान कुछ नहीं बोलता। इस प्रकार विज्ञान की अपनी मर्यादा Limitation है। और हमारी इन्द्रियाँ सीमित हैं; और इन्द्रियों द्वारा किये गए अनुमान तो इससे भी सीमित हैं। इसलिए विज्ञान सभी वस्तुओं पर प्रकाश डाल सके ऐसा तो नहीं है।

विज्ञान द्वारा हमें अपना स्वरूप पहचानना है तो उसे 'दृश्य' कर देना पड़ेगा। हमारा मन सभी दृश्य वस्तुओं को पहचान सकता है। लेकिन 'आत्मा' दृश्य तो कह ही नहीं सकते। लेकिन 'आत्मा तो दृष्टा है, नित्य दृष्टा है। वह कभी भी दृश्य नहीं हैं। इसलिए 'आत्मा' विज्ञान का विषय नहीं बन सकती।

यद्यपि विज्ञान में एक 'सायकोलोजी'-का—'मनोविज्ञान'-का विभाग है तो सही, यह हम जानते हैं। लेकिन वह तो मन का विचार करता है, 'आत्मा' का नहीं। इस विज्ञान के क्षेत्र में भी 'आत्मा' आ नहीं सकती। इसलिए मनोविज्ञान का कहना है; हाँ, तुम जिसके बारे में सोचते हो, हम उसे विज्ञान नहीं कहते। वह तो सिर्फ 'फिलोसोफी' है, उसे ऐसा या अन्य कोई नाम दे सकते हो। लेकिन वह विज्ञान तो है ही नहीं। इस 'फिलोसोफी' को 'दर्शन' जैसा नाम भी दिया गया है। लेकिन 'दर्शन' शब्द का कोई विशिष्ट अर्थ यहाँ अभिप्रेत नहीं होगा। 'फिलोसोफी' उसे कहते हैं, जिसके द्वारा किसी भी वस्तु को बुद्धि-तर्क से सिद्ध किया जा सके। किन्तु तर्कसिद्ध वस्तु को Observation अवलोकन या Experiment प्रयोग के ढाँचे में ढालकर सिद्ध नहीं कर सकते। यह पद्धति 'दर्शन' या फिलोसोफी कहलाती है। यह फिलोसोफी भी आत्मा के बारे में अधिक गहराई में नहीं पैठ सकती, क्योंकि उसकी एक विशिष्ट वैज्ञानिक विचारधारा है। इसकी ऐसी विचार पद्धति से आत्मज्ञान हो नहीं सकता। इससे मात्र इतना ही हो सकता है कि 'हम सामान्यतया जिसे आत्मा मान बैठे हैं, वही सचमुच में सच्ची आत्मा है इतनी बात समझ सकते हैं। जो चीज बदलती रहती हो, वह आत्मा नहीं, इतनी-सी बात जान सकते हैं। तो फिर 'यह आत्मा है क्या ? आत्मा याने क्या ? इस बारे में फिलोसोफी भी कुछ कर नहीं सकती, क्योंकि हम उसे अन्य रीति से प्रत्यक्ष नहीं दर्शा नहीं सकते। उसे इन्द्रियों का विषय बनाया नहीं जा सकता। दर्शन, फिलोसोफी विज्ञान से भले ही श्रेष्ठ हो, लेकिन वह विज्ञान विरोधी हो तो उसे मान्यता नहीं मिलती। इस तरह आत्मज्ञान विज्ञान से सिद्ध नहीं हो सकता, लेकिन वह विज्ञान विरोधी भी नहीं है। ★

---

ईश्वर-दर्शन के विषय में श्रीमाँ ने कहा :

जानते हो बेटा, यह कैसा होता ? यह तो मानो एक बच्चे के हाथ की मिठाई है। कुछ लोग बच्चे से इस मिठाई को माँगते हैं। पर वह उन लोगों को मिठाई नहीं देता। किन्तु वह जिसको चाहता है, उसे बड़ी सरलता से दे देता है। एक व्यक्ति जीवन भर ईश्वर-दर्शन के लिए कठोर तपस्या और साधना करता है पर उसे सफलता नहीं मिलती जबकि दूसरे व्यक्ति को बिना किसी प्रयास के उनके दर्शन हो जाते हैं। वे जिसे चाहते हैं उस पर ही कृपा करते हैं। उनकी कृपा ही महत्वपूर्ण वस्तु है।"

—माँ सारदा देवी

# विवेकानन्द और गरमपंथ

—अमलेश त्रिपाठी

[ भारतीय इतिहास के जानेमाने इतिहासकार अमलेश त्रिपाठी कलकत्ता विश्वविद्यालय में मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय इतिहास के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष रहे हैं। अभी हाल ही में जून, ९८ में इनका देहावसान हो गया। 'भारतीय राजनीति में गरमपंथ की चुनौती' जो सद्यः प्रकाश्य पुस्तक है, इसके अलावा इनकी अन्य महत्वपूर्ण पुस्तक 'ट्रेड एंड फाइनेंस इन बंगाल प्रेसिडेंसी' है। अंग्रेजी में इस पुस्तक के कई संस्करण छप चुके हैं।

'भारतीय राजनीति में गरमपंथ की चुनौती' एक विचारधारा की कहानी है जो राजनीतिक होने के साथ-साथ धार्मिक भी है। उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशक और बीसवीं सदी के पहले दशक के बीच भारतीय नेताओं की एक पूरी पीढ़ी इस विचारधारा की गिरफ्त में थी। इसमें धर्म और राजनीति एक-दूसरे में समाए हुए थे। आर्थिक कारण ऊपर से अपनी भूमिका निभा रहे थे जिसके कारण स्थितियाँ और जटिल हो गई थी। इस जटिल परिदृश्य को समझने के लिए अमलेश त्रिपाठी ने विभिन्न तत्वों को एक-दूसरे से अलग किया है तथा इस क्रम में राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास को समझाने का प्रयास किया है। जिस बहस का श्रीगणेश पूर्व और पश्चिम के बीच हुआ था और राजा राम मोहन राय जिसके पुरोधा थे, यह पुस्तक उस विराट बहस को सही और व्यापक संदर्भ में पेश करने का जटिल दायित्व निभाती हैं। यह बहस आज भी जिन्दा है। यानी उन्नीसवीं सदी की इस बहस का केन्द्रीय मुद्दा धर्म, आज भी विराजमान है।

उन्नीसवीं सदी की इस बहस में भागीदार पहली पीढ़ी के भारतीय नेताओं ने इसका उत्तर उपनिषदों के एकेश्वरवाद में खोजने की कोशिश की थी। ऐसा प्रयास पश्चिमी उपयोगितावादियों और विवेकवादियों द्वारा हिन्दू धर्म पर चलाए गए आरोप का उत्तर खोजने के क्रम में किया गया था। राजनीति में इन दोनों चिन्तन धाराओं का प्रतिनिधित्व नरमपंथियों और गरमपंथियों ने किया था। प्रस्तुत पुस्तक ग्रन्थ शिल्पी, दयानन्द मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली से शीघ्र प्रकाशित हो रही है—पुस्तक के इस अध्याय में इस बात का खुलासा है कि गरमपंथियों ने बंकिम, विवेकानन्द और दयानन्द के विचारों से क्या लिया और क्या छोड़ा। इस पुस्तक में इसी क्रम में टैगोर, तिलक, बिपिन चन्द्र पाल, लाजपत राय और अरविन्द घोष के बहिष्कार, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज सम्बन्धी विचारों का विवेचन किया गया है तथा इनके विचारों की परस्पर तुलना की गई है।

—रमेश आजाद]

विवेकानंद अध्यात्म जगत के माइकल एंजेलो थे। वह अक्सर कहा करते थे, हर रात जब मैं सोने जाता था, मेरे सम्मुख जीवन के दो आदर्श उपस्थित होते थे—एक ओर अपार धन सम्पत्ति और असीम शक्ति तथा दूसरी ओर ऋषियों जैसा वैराग्य।" जिस प्रकार माइकल एंजेलो ने क्लासिकी हारमनी, नवप्लेटोनिक आदर्शवाद और रेनासां के यथार्थवाद के बीच के तनाव को महसूस किया, उसी प्रकार विवेकानंद को अपने अन्दर भारत के आध्यात्मिक आदर्शवादी और पश्चिम के वैज्ञानिक धर्म निरपेक्षतावादी दृष्टिकोण के तनावों की अनुभूति हुई। मिल ने उसमें सर्वशक्तिमान एवं दयालु सृष्टा के प्रति शंका उत्पन्न की। ह्यूम और स्पेंसर ने इसे मात्र पुष्ट किया। मनुष्य और प्रकृति में अंतर्निहित अशुभ की समस्या का निदान निकालने में कोंत के मानव-धर्म की विफलता के कारण वह ब्रह्म समाज में आये पर उनका लोकोत्तरवाद एवं अंतर्ज्ञानवाद उनके संशयालु मस्तिष्क के संदेहों को न तो दूर कर सका और न उनकी तीव्र उत्कंठा वाली आत्मा की पिपासा को संतुष्ट कर सका। आत्मा की इस सघन यामिनी में रामकृष्ण उनके सम्मुख देवदूत के रूप में अवतरित हुए तथा उसे मातृवत भाषा में संबोधित किया। देवेन्द्रनाथ भी जिस साहस का परिचय नहीं दे सके थे, उससे भी अधिक साहस के साथ उन्होंने दावा किया कि वह ईश्वर का साक्षात दर्शन कर चुके हैं तथा यह कि जड़ जगत को अपेक्षा धर्म की अनुभूति कहीं अधिक असीम मात्रा में तीव्रता से की जा सकती है। विवेकानंद की दृढ़ तर्कशक्ति ने विद्रोह किया, पर उनकी आत्मा पत्थरों में जल के दर्शन के लिए लालायित हो उठी। आत्मा के इस सहज कथन स्वीकार भाव में सचाई की एक अनोखी ध्वनि है। उस सर्वव्याप्त शून्य में जिस जादुई स्पर्श ने उनके अहम को विगलित कर दिया, वह विभ्रम था या प्रत्यक्ष दर्शन के द्वार का उद्घाटन ? लगातार छह वर्षों तक वह दक्षिणेश्वर में गुरु से अपने व्यक्तिवादी इच्छा स्वातंत्र के लिए संघर्ष करते रहे। कभी एक गान, एक स्पर्श, एक हर्षोन्माद और उसका प्रतिरोध ढहता गया तथा उन्होंने पूर्ण आत्म समर्पण में शांति की अनुभूति की।

यह है सच्चा संन्यासी...वह जो उपदेश देता है उस पर चलता है। आकाश की भांति विस्तार, महासमुद्र की गहराई, वज्र की शक्ति और बिल्लौर की स्वच्छता लिए रामकृष्ण उन्हें भारत के समस्त धार्मिक चिंतन का मूर्त रूप प्रतीत हुए। गुरु ने उन्हें अद्वैत की अनुभूति देने के साथ ही माँ के दर्शन कराए। इन्होंने उन्हें सारी सत्ता की एकता तथा ससीम और असीम की क्रीड़ा का जैसा बोध कराया, वैसा किसी यूरोपीय दर्शन के लिए संभव नहीं हुआ था।

विवेकानंद ने भारत के धूल भरे मैदानों में, सभ्यता के उषा काल में आत्मा की अमरता और स्वाधीनता का संदेश देने वाली स्वाभिमानी जाति के क्षत-विक्षत और विकृत अवशेषों में ईश्वर को फिर से खोज निकाला। पर क्या वह अपने आध्यात्मिक अन्वेषण में डूबे रह कर आत्

केन्द्रित संत बन कर ही रह जाएं अथवा मानव में स्थित जीवित ईश्वर की उपासना करें ? क्या उनके गुरु ने उनसे नहीं कहा था कि उसे ब्रह्मानंद में मग्न सामान्य वैरागी बन कर नहीं रहना है बल्कि 'विश्व को जड़ से झकझोर देना' ही उनकी नियति है ?

पर निर्णायक फैसला अभी होने ही को था कि इसी बीच शिकागो में उनका आमना-सामना उस यांत्रिक सभ्यता से हुआ जिसका प्रतीक डायनेमो हैं जो पश्चिम की निष्प्राण शक्ति की द्योतक था। विश्व धर्म संसद में उन्होंने वेदांत के पुनर्जागरण का उद्घोष तथा रामकृष्ण के संदेश का प्रचार किया परन्तु पेट और आत्मा की भूख से संतप्त, जाति प्रथा और साम्राज्यवादी कुचक्रों में विभाजित विदेशी राष्ट्र स्वयं अपनी इंद्रियों की दासता में बद्ध अपने देशवासियों के लिए उनका संदेश और उपदेश क्या होता ? विवेकानंद कदापि एकतरफा धर्मप्रचारक नहीं हो सकते थे। उनके सम्मुख आत्माभिमानी पश्चिम की लोभारक आत्मतुष्टि। क्षयशील काल के मध्यपूर्व और पश्चिम दोनों में ही मानव का जो शाश्वत तल था वह बचा रह गया।

उन्होंने अमरीका और यूरोप के घमंडी लुटेरों और पक्के भौतिकवादियों को प्रौढ़ भारत की सहिष्णुता, उसकी निर्लोभी आत्मा के गुण, उसकी सहिष्णु मनोवृत्ति के प्रशांत भाव तथा उसके सर्वप्रणाली प्रेम की सौम्यता का पाठ पढ़ाया। भारत में उन्होंने भारतवासियों के आलस्य, उसके मानसिक और आध्यात्मिक शैथिल्य तथा उनमें एकता और नैतिक साहस के अभाव पर प्रहार किया। 'हम महान हैं, हम महान हैं। यह सब बकवास है। असल में हम मूढ़ हैं। भारत बहुत दिनों से अपने अतीत की उपेक्षा करता आ रहा था। घोंघे की तरह अपने को समेट कर उसने कुछ भी देना और ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया था। उसने घृणा की बुनियाद पर अपने चारों ओर रूढ़ियों की दीवार खड़ी कर रखी थी। यह आदत बढ़ती गई थी और भारत ने पुनर्जागरण, धर्मसुधार, वैज्ञानिक क्रांति और बुद्धिवाद के आंदोलनों से अपने को अछूता रखा। आखिर क्यों ? विवेकानंद ने देखा कि 'भक्ति' भावुकता में लिपटी पड़ी है, मूर्खता ने गेरुआ जामा पहन रखा है, जादू-टोना तपश्चर्या का स्वांग धरे हुए हैं, ज्ञान विकृत होकर टीका-दर-टीका का रटंत बनकर रह गया है तथा इतिहास पुरुषों की पूजा बन गया है।

'धर्म भूखों के लिए नहीं है', अतः वेदांत की मानव कल्याण पर बल देना होगा। जनसाधारण की अपेक्षा एक ऐसा राष्ट्रीय पाप था जिसकी उसने निंदा की। अरविन्द ने कर्मयोगी (२६ जून, १९०९) में लिखा, 'विवेकानंद का महाभियान जिसे उनके गुरु ने विश्व को अपनी भुजाओं में लेकर परिवर्तित करने के अभियान के रूप में निर्दिष्ट किया था, इस बात का प्रथम स्पष्ट चिह्न था कि भारत न केवल अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए वरन विश्व विजय के लिए जाग उठा है।'

गरमपंथियों ने अभीः का शंखनाद सुना, 'उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत।' उन्होंने मानव का निर्माण करने वाले इस धर्म के आह्वान को सुना और लजारस की तरह पुनर्जीवित होकर

उद्घोष किया, 'हम चिरंतन हैं, मुक्त और अमर हैं।' जैसे जीवन पर से माया का मिथ्या आवरण हटना अवश्यंभावी है जिससे सच्ची आध्यात्मिकता परिव्याप्त हो सके, उसी तरह विदेशी शासक का भ्रममूलक आधिपत्य भी अवश्य समाप्त होना है। उनकी वाणी से अपार आत्मविश्वास और इच्छा-शक्ति उद्भूत हुई। चूंकि यह दुर्बोध शब्दजाल मात्र नहीं था, अतः इसने उनमें इतना साहस पैदा किया कि वे मृत्यु को चुनोती दे सकें क्योंकि दार्शनिक दृष्टि से इसका अस्तित्व नहीं है। 'मुझे मृत्यु का कोई भय नहीं। न मुझे भूख है, न प्यास। मैं ही वह हूँ। मैं ही वह हूँ।'

पर गरमपंथियों ने विवेकानंद द्वारा पश्चिम की बुराइयों के विवरण को चिकित्सक की हितैषणा के रूप में ग्रहण करने के बदले शत्रु की विद्वेषी भावना के रूप में ग्रहण किया। जिसे वे समझ नहीं पाए, उसे क्षमा भी नहीं कर सके। आत्मालोचना की उस वेदना का उन्होंने कभी अनुभव नहीं किया और पुनः राष्ट्र के चारों ओर दीवार खड़ी कर ली। ईसाइयत के प्रति, जिसे वे साम्राज्यी धर्म कहते थे, घृणा की भावना से अभिभूत कर लिया और उन्होंने हिन्दुत्व के विघटन पर कभी गंभीरता पूर्वक विचार करने की परवाह नहीं की। इस प्रकार उनका देश प्रेम गहरा तो हुआ पर परिप्रक्ष्य विहीन भी हो गया।

बंकिम ने मातृभूमि की जो काव्यात्मक कल्पना की थी, वह पहले-पहल भारत की कोटि-कोटि दलित जनता में रुपायित हुई। विवेकानंद ने कहा कि भारतीय समाज उनके बचपन का पलना, यौवन का रम्योद्यान और बुढ़ापे का आश्रय रहा है। भारत की मिट्टी ही उनके लिए स्वर्ग है। 'हमारी अपनी जाति यही एकमात्र वह देवता है जो जाग्रत है, वह सब जगह छाया है।' दुनिया में कोई भी ऐसा धर्म नहीं है जिसमें हिन्दू धर्म की तरह मानव गरिमा की इतनी उदात्त महिमा गाई गई हो और न ही कोई ऐसा धर्म है जो हिन्दू धर्म की तरह दुखियों और दलितों की गर्दन निष्ठुरता-पूर्वक दबोचे हो। हिन्दू धर्म की भ्रांत व्याख्या इसका कारण है। हिन्दू धर्म के पाखंडियों और पोंगा पंडितों ने शारीरिक और मानसिक अत्याचार के साधन खोज निकाले थे। धर्म-दान के द्वारा इस बुराई को दूर करना विवेकानंद का अभिप्राय था। उनके मिशन के संन्यासी गांव-गांव घूम कर गरीबों के दरवाजे तक धर्म का संदेश ले जाते और यहाँ तक कि चांडालों को भी बताते कि ब्राह्मणों की ही तरह उन्हें भी धर्म पर उतना ही अधिकार है और उन्हीं की तरह इच्छा स्वातंत्र्य प्राप्त है क्योंकि सब में एक ही ब्रह्म का निवास है। राष्ट्रीय विरासत को इस प्रकार पुष्ट बनाए बिना, पश्चिम के प्रति भारत की प्रतिक्रिया मात्र पैबंदकार नकल बन कर रह जाएगी।

बंकिम की भांति विवेकानंद ने समन्वित विकास पर बल दिया। उनका पूर्ण मानव अखंड मानव है जो 'जितना ही तत्वज्ञ; उतना ही भावना प्रधान, उतना ही रहस्यवादी और उतना ही कर्मप्रवृत्त' है। यह शंकर की विशाल बौद्धिक क्षमता और बुद्ध की असीम करुणा का संयोग होगा। स्वयं विवेकानंद ऐसे पूर्ण मानव थे। 'चार अश्वों की बागडोर को संभालने वाले सारथि की तरह उन्होंने सत्य के चारों पक्ष (चार योग) पर समान रूप से दृष्टि रख उनमें एकता स्थापित की।' रामकृष्ण के सच्चे शिष्य विवेकानंद ने समग्र और सार्वभौम के पक्ष में आंशिक और सीमित का खंडन किया। भारत के सार्वभौमिक लक्ष्य की सिद्धि और विश्व के प्रति उनके दायित्व की पूर्ति का इसके अतिरिक्त कोई दूसरा तरीका नहीं था।

# बाल्मीकि भए ब्रह्म समाना

रुद्र किंकर वर्मा

किसको पता था कि वही क्षेत्रपाल कालान्तर में दस्यु रत्नाकर और बाद में आदि कवि महर्षि बाल्मीकि के नाम से सुप्रसिद्ध हो जायेगा। उनके द्वारा रचित महाकाव्य विश्व साहित्य में अप्रतिम स्थान रखेगा। सच्चे संत सद्‌गुरु के दर्शन और उनके द्वारा बताये नाम मंत्र के जप से मनुष्य क्या से क्या हो सकता है। इसके ज्वलंत उदाहरण महर्षि बाल्मीकी हैं।

"सठ सुधरहिं सत सङ्गति पाई।
पारस परसि कुधातु सोहाई॥"
(रामचरित मानस, बालकाण्ड)

प्राचीन काल में किसी निबिड़ वन प्रदेश में क्षेत्रपाल नामक युवक निवास करता था। वह अत्यन्त बलवान और दृढ़ था। शास्त्रानुसार इसका जन्म अंगिरागोत्र के ब्राह्मण कुल में हुआ था। यह महर्षि च्यवन की संतान एवं देवी सुकन्या का लाल था। शिशुपन में एक भील ने वहाँ से चुराकर ब्राह्मणत्व से इतना पीछे ढकेल दिया कि वह ईश्वर नाम तक का विरोधी था। परिस्थिति के कारण कुछ समय के लिए कृषक भी बना किन्तु तत्कालीन जागीरदार के घृणित एवं क्रूरतापूर्ण रवैये के कारण अन्त में उसने दस्यु-वृत्ति स्वीकार कर ली। उसका कहना था कि—'मनुष्य धर्मवान, नीतिवान और सदाचारी होकर नहीं केवल धनवान और बलवान होकर संसार में जी सकता है।" अपने आत्मीयों का भरण पोषण करने में असफल क्षेत्रपाल ने अपने पारिवारिक सदस्यों से कहा कि—

"आज से क्षेत्रपाल किसान मर गया और विचारों का रत्नाकर हाथ आ जाने के कारण—'रत्नाकर डाकू' के नाम से उसने दूसरा जन्म धारण कर लिया। बस, आज से मैं 'रत्नाकर डाकू' हूँ। इसी नाम से अब मुझे पुकारना। सारा संसार इसी नाम से अब मुझे पुकारेगा।"

दस्यु रत्नाकर अब पथिकों पर आक्रमण करता यदि उसे कोई कुछ कहता तो जान से मार देता। लूटी सम्पत्ति से वह अपने माता-पिता, स्त्री-पुत्रादि परिजनों का उदर पोषण करता। इस प्रकार बहुत वर्षों तक हत्यारा रत्नाकर इस लोक निंदित क्रूर-कर्म को करता रहा।

एक दिन उसने देखा कि वीणा बजाते हुए कोई साधु उधर से चले आ रहे हैं। समीप आते देख रत्नाकर ने कहा—"बन्द कर-बन्द कर! भीख मांगने का पेशा करने वाले निकम्मे जीव, अपना यह तोता पुराण बन्द कर। इस वन में—रत्नाकर के इस महान राज्य में ईश्वर की रट लगाना खुली बगावत करना है।"

वीणा बजाते हुए कोई और नहीं बल्कि विख्यात ऋषि नारद थे। उन्होंने कहा—क्या! रत्नाकर ईश्वर की सृष्टि में नहीं है।

रत्नाकर ने कहा—ईश्वर की सृष्टि कहाँ है? किधर है। मैं जिसे चाहूँ रंक से राजा और राजा से रंक बना दूँ। रख दे। जो तेरी झोली में हो, छोड़ जा यह तारों वाला ढकोसला यहीं पर—नहीं तो ईश्वर नाम का रटासा लगाने वाली यह जिह्वा अभी इस कुल्हाड़ से चटनी बन जायेगी। यह न समझना कि साधु जानकर मैं तुझे छोड़ दूंगा। तुझ जैसे पेशेवर भिखारियों की समपत्ति

का तो रत्नाकर ही एकमात्र अधिकारी है। जल्दी सामान निकाल।

नारद जी ने बड़े ही कोमल स्वर से हंसते-हंसते कहा—मेरे पास और है ही क्या? यह वीणा है, एक वस्त्र। इसे लेना चाहे तो ले लो, जान क्यों मारना चाहते हो? अच्छा एक बात बताओ! तुम मुझे क्यों लूट रहे हो? मनुष्यों का धन अपहरण करना और उनका वध करना तो बड़ा जघन्य दुष्कृत्य है। तुम क्यों यह पाप संचित कर रहे हो।

दस्यु ने उत्तर दिया—मैं इस अपहृत धन द्वारा स्वजन एवं कुटुम्बियों का पालन करता हूँ।

देवर्षि नारद ने यह सुनकर कहा कि अच्छा तुमने कभी इस बात का भी विचार किया है कि क्या तुम्हारे परिजन तुम्हारे इस पाप के भी सहभागी होंगे। ईश्वर के न्यायालय में जब तुझे नर हिंसक डाकू के लिए दण्ड मिलेगा—तब वे सब तेरी जगह पर नरक में जाने के लिए राजी हैं।

दस्यु रत्नाकार ने कहा—निश्चय ही वे सब मेरे पाप का हिस्सा ग्रहण करेंगे। नारद ने कहा—तो जाओ पूछ कर आ जाओ।

रत्नाकर ने कहा—पहले शर्त करो यदि तू हारा तो तेरी वीणा ही नहीं शीश भी समाप्त कर दिया जायेगा और मैं हारा तो कुल्हाड़ा ही नहीं मेरा भविष्य भी तेरे चरणों में अर्पण हो जायेगा।

नारद ने कहा—शर्त स्वीकार है। तब तक मैं यहीं बैठता हूँ। तू पूछ कर आ।

रत्नाकर ने कहा—वाह! क्या तू चाल चलता है। मैं जाऊँ उधर तू भागेगा इधर। मुझे इस प्रकार भुलावे में मत डाल। चल तुझे इस वृक्ष से बाँध देता हूँ।

नारद को वृक्ष में बाँधा वह अपने परिजन से पूछने जाता है। घर पहुँच दस्यु ने अपने समस्त आत्मीयजनों को बुलाया और बारी-बारी से अपने माता-पिता, स्त्री-पुत्र, कुटुम्बियों से पूछा—"मैं जो पाप कर्म करके तुम सभी का भरण पोषण करता हूँ, उस पाप कर्मफल के हिस्सेदार हो या नहीं।"

सभी ने अपनी-अपनी भाषा में एक ही बात कही 'हमें खिलाना-पिलाना तुम्हारा कर्तव्य है। हम क्या जानें कि तुम किस प्रकार धन लाते हो। हम तुम्हारे पापों के हिस्सेदार नहीं।'

दस्यु की आखें खुल गयी। उसने कहा, "यह है संसार की रीति। जिनके लिए मैं यह पाप कृत्य कर रहा हूँ, वे मेरे आत्मीय भी मेरे प्रारब्ध के भागी नहीं होंगे।" वह उस स्थान पर आया, जहां उसने देवर्षि नारद को बाँध रखा था उन्हें बन्धन मुक्त करके वह उन साधु के चरणों पर गिरकर आद्योपान्त सारी घटनाएँ सुनाकर बोला, "प्रभु! मैं हारा, मैं आपकी शरण में हूँ, मेरी रक्षा करो। मैं क्या बताऊँ!"

देवर्षि ने कहा—इस पापपूर्ण दस्युवृत्ति का परित्याग कर दो। तुमने देख लिया तुम्हारे परिजनों में से कोई भी तुमसे सच्चा प्रेम नहीं करता। इसलिए इन सब मोहपूर्ण भ्रांतियों को त्याग दो। ये लोग शुभ के भागी तो हैं किन्तु अशुभ का कोई साथी नहीं होना चाहता। इसलिए तुम उसकी उपासना करो जो पाप-पुण्य सभी अवस्थाओं में हमारा साथ देता है। यह कहकर उन्होंने रत्नाकर को विधि निषेध कर्म, श्वान-पान, जीव-पीव, स्वर्ग नरक, संत-भगवंत, माया-ईश, ज्ञान-ध्यान आदि के सम्बन्ध में जानकारी दिये।

"पारस अरू संत में, बड़ो अंतरो जान।
वह लोहा सोना करे, गुरु कर ले आप समान॥"

की उक्ति को चरितार्थ करते हुए देवर्षि ने उन्हें नाम मन्त्र बतलाये। साथ ही ईश्वरोपासना की विधि मानस जप, मानस ध्यान दृष्टि योग एवं नाद योग की क्रिया बतलायी। रत्नाकर ने अपने

था अक्षर को उलट दिया गया! नाम नहीं उलटा, यह तो अक्षर उलट दिया गया है।

उलटा नाम क्या है? उनलोगों ने कहा—यह तो हमलोग नहीं जानते हैं।

महर्षि जी ने सरल ढंग से समझाते हुए कहा—सुनिये। "नाभि, हृदय और कंठ इन तीनों स्थानों में ठोकर लगाकर मुँह के उच्चारण स्थानों को स्पर्श करती हुई जो ध्वनि बाहर निःसृत होती है, उसको बैखरी वाणी कहते हैं।

(आज, पटना से साभार)

# विवेक शिखा की 'संरक्षक'-योजना

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर 'विवेक शिखा' के 'स्थायी कोष' की एक योजना बनायी गयी है। जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रुपये या इससे अधिक रुपये विवेक शिखा के 'स्थायी कोष' के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे। 'विवेक शिखा' में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे यावज्जीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे। विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इस पत्रिका के संरक्षक हो सकते हैं। यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू है।

—व्यवस्थापक

## संरक्षक-सूची

| संरक्षक का नाम | स्थान | रुपये |
|---|---|---|
| १. श्रीमती कमला घोष | इलाहाबाद | ३,६६०/- |
| २. श्री नन्द लाल टांटिया | कलकत्ता | १,०००/- |
| ३. श्री हरवंश लाल पाहड़ा | जम्मूतवी | १,०००/- |

# गाँधी और धर्म

—डॉ० एस० एन० पी० सिन्हा, पटना

भारत धर्मप्रधान देश है। पश्चिमी सभ्यता जहाँ भौतिकता को अधिक महत्व देती रही है, वहीं भारतीय सभ्यता-संस्कृति के मूल में धर्म मुख्य आधार रहा है। धर्म एक व्यापक अवधारणा है। धर्म का अर्थ जीवन को धारण करने और उन्नत करने वाली शक्ति है। 'महाभारत' में कहा गया है कि 'धर्मो धारमति प्रजाः' यानी धर्म वह है जो समाज को धारण करने की शक्ति और संकल्प से संचालित हो। धर्म का अनुवाद 'रिलिजन' या 'मजहब' नहीं है। हमारे यहाँ बल्कि विभिन्न धार्मिक पंथों या सम्प्रदायों को धर्म की अभारतीय अवधारणा के तहत रखा जा सकता है।

धर्म चूँकि व्यापक अवधारणा है, इसलिए भारत में समाज सुधार के व्यापक प्रयास धार्मिक आंदोलनों के जरिये हुए। बौद्ध धर्म, जैन धर्म, वैष्णव धर्म, नव वेदान्त आदि जो आंदोलन हुए, वे धार्मिक आंदोलन होते हुए भी मूलतः सामाजिक आंदोलन थे, जिनके जरिए शोषित पीड़ित दुःखी जनों की मुक्ति की चेष्टा हुई। इसलिए आधुनिक काल में स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गाँधी भारत की मुक्ति का जब स्वप्न देखते हैं तो धर्म को नये सिरे से परिभाषित करते हैं और निज की मुक्ति की जगह धर्म को समाज की मुक्ति का मूल आधार बनाते हैं।

भारतीय दर्शन का मूल वेदान्त या उपनिषदें हैं। उन्हीं को आधार बनाकर अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि धार्मिक आंदोलन चलते हैं। उन्हीं को आधार बनाकर स्वामी विवेकानन्द 'नव वेदान्त' की व्याख्या करते हैं और भूखे आदमी को धार्मिक उपदेश देने की जगह रोटी देने को असली धर्म मानते हैं। नव वेदान्त की व्याख्या के जरिये वे धर्म से झोपड़ियों में रहने वाले गरीब और भूखे लोगों के उद्धार की बातें करते हैं। इस तरह धर्म उनके लिए मानव मुक्ति का आधार बनता है। वेदान्त दर्शन को वे सार्वभौम धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं और विश्व के सभी धर्मों का सार एक ही ब्रह्म में मानते हैं। उनका मानना है कि जिस तरह सभी नदियाँ सागर में जाकर मिलती हैं, उसी तरह सभी धर्म एक ही तत्व में समाहित होते हैं।

आधुनिक भारत की मुक्ति में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की बड़ी भूमिका है। गाँधी जी राजनीति और धर्म को अलग करके नहीं देखते। उनका सारा राजनीतिक कर्म एक धार्मिक कर्म है। दरिद्र नारायण की मुक्ति और भेदभाव की गहरी खाई को पाटने के लिए वे धर्म की शरण में जाते हैं और वहाँ से भारत और सम्पूर्ण विश्व समुदाय के लिए सत्य-अहिंसा का सन्देश लेकरआते हैं। विश्व में शांति की स्थापना सत्य-अहिंसा के जरिये होगी, यह गाँधीजी का अटल विश्वास था। इसलिए वे 'सत्य' को ही ईश्वर मानते थे। पहले उनका विचार था कि 'ईश्वर' सत्य है। लेकिन बाद में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि 'सत्य' ही ईश्वर है। उन्होंने ईश्वर की छवि समाज के सबसे उपेक्षित लोगों में देखी और अछूतों का

उद्धार उन्हें ईश्वरीय आराधना सा लगा। गाँधी जी के धार्मिक विचारों को ठीक से न समझने के कारण उन्हें कई बार आलोचना का पात्र भी बनना पड़ा। लेकिन जिसे वे 'सत्य' मानते थे. उस पर से उन्हें कोई डिगा नहीं सका।

'गीता' महात्मा गाँधी की प्रिय पुस्तक थी। गीता से उन्होंने 'निष्काम कर्मयोग' की प्रेरणा ग्रहण की। 'रामचरित मानस' भी गाँधी जी को बहुत प्रिय था और मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र उन्हें आदर्श लगता था। इसलिए उन्होंने स्वतन्त्र भारत में रामराज्य' का सपना देखा। 'रामराज्य' से गाँधी का आशय धर्म आधारित भारत का निर्माण नहीं था। 'रामराज्य' इनका एक स्वप्न था, जिसमें कोई छोटा-बड़ा नहीं होगा, जहाँ भेद-भाव की दीवारें नहीं होगी। गाँधी जी अपने को हिन्दू मानते थे। लेकिन वे गीता, मानस की तरह बाइबिल, कुरान और दूसरे धार्मिक ग्रंथों को भी महत्व देते थे। उनकी नजर में सच्चा धार्मिक वही है, जो अपने धर्म पर सत्य आचरण मे चलते हुए दूसरे धर्मों के प्रति आदर का भाव रखे। उनका विश्वास सर्व धर्म समभाव में था। उनकी प्रार्थना में गीता, नरसी मेहता और दूसरे हिन्दू सन्तों के भजन के साथ बाइबिल और कुरान की भी पंक्तियां गायी जाती थीं। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी उनकी नजर में बराबर थे। वे जिस स्वतन्त्र भारत का सपना देखते थे, उसमें विश्व की सभी हवाओं के प्रवेश की गुंजाइश थी। लेकिन वे यह भी मानते थे कि हमारी जड़ें इतनी मजबूत हो कि बाहरी आँधी उन्हें उखाड़ न सके।

गाँधी जी हिन्दू थे लेकिन निजी आचरण में वैष्णव धर्म के ज्यादा करीब थे। अहिंसा की प्रेरणा उन्होंने वहीं से ली थी। लेकिन वैष्णव का अर्थ उनकी निगाह में छापा-तिलक लगाकर माला फेरने से नहीं था। मध्यकाल के सभी सत-भक्त कवि उन्हें प्रिय थे। लेकिन गुजराती के वैष्णव कवि नरसी मेहता का भजन उन्हें विशेष प्रिय था— 'वैष्णव जन ते तेने कहिए जे पीर पराई जाणे रे।"

आज जब दुनिया-प्रदूषण, भूखमरी, गरीबी, आणविक युद्ध के खतरों से घिर गयी है तो गांधी जी की बातें ज्यादा उपयोगी हो गयी हैं। भारत समेत पूरी दुनिया आज विनाश के कगार पर खड़ी है। आधुनिकता की दौड़ ने प्रकृति को असंतुलित कर दिया है। आज प्राकृतिक आपदाएँ इतने विध्वंसक रूप में प्रकट हो रही हैं, जो विश्व के समूचे वैज्ञानिकों के लिए चिन्ता का विषय है। ऐसे में गाँधी जी के धार्मिक आशय को समझने की आज ज्यादा जरूरत है। उनका सारा कर्म मनुष्य जाति की उन्नति के लिए था। उनके लिए व्यक्ति बुरा नहीं था। उसके भीतर की बुराई बुरी थी। इसलिए वे पाप से घृणा करो, लेकिन पापी से नहीं, सदा कहते रहे और गोली खाकर मरते वक्त भी उनके मुख से 'हे राम' ही निकला। उनके राम शील, मर्यादा, पर दुख कातर, सर्वधर्म समभाव और अडिग विश्वासों के प्रतीक थे। धार्मिक सहिष्णुता में महात्मा गाँधी का अटूट विश्वास था। आज जबकि यह भाव मानव-मानव के बीच घट रहा है, 'शांतिदूत' बापू पूरी दुनिया के लिए अर्थवान बन गये हैं।

गाँधी के लिए कर्म ही धर्म था। धर्म शब्दों तक सीमित रहे, यह उन्हें मंजूर नहीं था। जिसे वे सत्य मानते थे, उसे सबसे पहले अपने आचरण में उतारते थे। आचरण विहिन उपदेश को वे मिथ्या मानते थे। शब्द और कर्म की एकरूपता की विजय ही गांधी के आदर्शों की विजय थी। गाँधी जी का धर्म उनके आचरण से एक इंच भी इधर-उधर नहीं था। यही कारण है कि उनकी वाणी का व्यापक असर मानव जाति पर पड़ा।

ज्ञान भारती के रजत जयन्ती समारोह में तात्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने कलकत्ता को मीनी इंडिया कहा था। उत्तर काशी भी मीनी इंडिया ही है। यह साधुओं की नगरी है और यहाँ देश के सभी भागों एवं प्रदेशों के सभी भाषा-भाषी सन्त साधना करते हैं। कई दुर्लभ सन्त गत ५०/६० वर्षों से यहाँ हैं। अभी स्वामी वागेशानन्द जी के दर्शन किये। स्वामी वागेशानन्द जी २३ वर्ष की अवस्था में पंजाब से यहाँ आये और तत्पश्चात् निरन्तर यहाँ मधुकरी पर तप करते हैं। एक संन्यासी को लक्ष्य किया कि भिक्षा लेकर वे गंगा जी की तरफ जा रहे हैं। पूछने पर मुस्कुरा कर चले गये। इस यात्रा में उन्हें पुन: उसी प्रकार गंगा जी की तरफ जाते हुए देखा। उनसे आग्रह किया कि महाराज क्या बात है? निरन्तर आशीर्वाद प्राप्त होने से नजदीकी आ गयी। उन्होंने बताया कि जिस दाता के अन्न की रोटी है उसकी मंगलकामना हेतु गंगा मैया से प्रार्थना करता हूँ। कितनी सात्विक भावना। चार सूखी रोटी, दो कुलछी दाल के निमित्त कितना आशीर्वाद। एक सन्त उड़ीसा के हैं। पूर्व काल में सरकारी अधिकारी रहे। उन्हें तीन हजार रुपया प्रति माह पेन्शन मिलता है। सम्पूर्ण राशि साधुओं की सेवा में वितरित कर देते हैं। अपने आश्रम में ही होमियोपैथी चिकित्सा चलाते हैं। इतने भावुक हैं, क्या कहें। परसों एक मरीज को लेकर मेरे पास पहुँचे कि भाई इसे टी० बी० हो गयी है और मैंने सुना है कि राजस्थान के सीकर में टी० बी० का अस्पताल है। इन्हें कैसे भेजना। खर्च की व्यवस्था मेरी पेन्शन राशि से हो जायगी। मैंने कहा कि महाराज वहाँ इलाज नि:शुल्क होता है और आप अपनी पेन्शन राशि यथावत अन्य कार्यों में लगाते रहें। गत वर्ष भी एक संन्यासी तीव्र तपस्या एवं पूरा आहार नहीं लेने के कारण अस्वस्थ हो गये। यहाँ के डाक्टरों ने जवाब दे दिया। उन्हें एक साधु के साथ सीकर भेजा गया। उनके पहुँचने पर अस्पताल के मंत्री जी का फोन आया कि स्वामी जी की अवस्था तो अति गंभीर है। उत्तर काशी से यहाँ तक कैसे पहुँच पाये। ऐसा लगता है कि महाराज ठीक तो अपने तप के जोर से होंगे किन्तु शाबासी हमारे डाक्टरों को मिलेगी। दो महीनों की चिकित्सा के बाद वे संन्यासी पूर्ण स्वस्थ होकर यहाँ लौट आये।

अभी दो महीना पूर्व एक १८ वर्ष का युवक केरल का आया है। हिन्दी नहीं आती। शिवानन्द आश्रम के स्वामी चैतन्यानन्द जी से भंडारकर की अंग्रेजी से संस्कृत का अध्ययन खूब मन लगाकर कर रहा है। अंग्रेजी में गीता जी के भाष्य से संधिविच्छेद करने में समर्थता आ रही है। नियमित भिक्षा लेने पहुँचता है और दण्डी आश्रम की कुटिया में रहता है। दण्डी आश्रम की ४२ कुटिया है और सभी में सन्यासी रहते हैं। कई संन्यासी तो केवल भिक्षा लेने हेतु पूरे दिन में एक बार बाहर आते हैं। एकाध घंटा कोठरी के बाहर बरामदे में टहलते हुए गंगा मैया का दर्शन करते

हैं। एक वृद्ध संन्यासी के दर्शन हुए। वे उजेली स्थित कुटिया प्रतिदिन तीन बार गंगा स्नान करने करीब ५० फूट नीचे नगे पैर जाते हैं। पिछले वर्षों में दिसम्बर की सर्दी में नंगे बदन कंकरीले पहाड़ी रास्तों से बिना जूते जा रहे थे। मैंने आश्चर्य से पूछा कि महाराज इतनी ठंढ में बर्फ के पानी में स्नान करेंगे। कहने लगे कि जब यह शरीर छूटेगा तो मुझे क्या गर्म पानी में रखोगे। ये संन्यासी जिनका संन्यास नाम आत्मेन्द्र सरस्वती हैं, संन्यास पूर्व काल में भारत सरकार के रक्षा विभाग के उप-सचिव रहे। मैसूर के अध्यात्म प्रकाश केन्द्र के स्वामी सच्चिदानन्द जी से संन्यास लिया। अब वृद्धावस्था के कारण अपने गुरु स्थान मैसूर के समीप होले बरसिंगपुर में रहते हैं। सरकारी नौकरी छोड़ने के पश्चात् 20 वर्षों तक उत्तर काशी रहे। इन महाराज जी से घनिष्ठता हो गयी। बतलाने लगे कि आपके पिताजी रक्षा मंत्रालय की सलाहकार समिति के सदस्य थे और मैं उप समिति का सचिव रहा।

एक ३५ वर्ष के युवक महादेव शास्त्री जो कि आन्ध्र प्रदेश के हैं, बम्बई में आई. डी. बी. आई. संस्थान के सहायक मैनेजर रहे। मन में वैराग्य जागा और तीन वर्षों से गंगोत्री एवं गोमुख में हैं। कुछ दिन मेरे पास थे। उनके पास वेद आदि ग्रन्थों का साहित्य रहा। वह मेरी कुटिया में ले आये कि इनका उपयोग कर लिया जाये। मैंने पूछा महाराज यह तो आपके भी काम आयगी। बोले अब केवल गंगा जी के दर्शन करूंगा। उनके द्वारा प्रदत्त दर्जनों ग्रन्थ अभी भी मेरे पास रखें हैं। महादेव शास्त्री अपने परिवार के एकलौते पुत्र हैं। माँ उदास हो गयीं। महादेव ने अपनी माता जी को आश्वासन दिया कि जब तक आपका शरीर रहेगा तब तक गेरुआ वस्त्र धारण नहीं करूंगा और आपकी अस्वस्थता की सूचना मिलते ही अवश्य पहुँचूंगा। यह सब तो भूलावे की बात है किन्तु वैसे शंकराचार्य महाराज भी अपनी माता की अंत्येष्टि क्रिया हेतु कालडी पहुँचे थे।

एक व्यक्ति मुझे सुबह टहलते समय गंगोत्री की तरफ बढ़ता हुआ मिला। दोनों हाथ कटे हुए। गले में लोटा लटकाये और सिर पर कम्बल गमछे में लपेटा हुआ। मैंने पूछा कि महाराज कहाँ से आगमन हुआ। बोले कि बाबूजी मैं महाराज नहीं हूँ। जात का ग्वाला हूँ। बिहार के सारण गाँव से आया हूँ। मेरे दोनों हाथ थ्रेसर मशीन में कट गये। मैंने कहा कि गंगोत्री यहाँ से १०० कि०मी० है! आप बस में जाइये, व्यवस्था हो जायगी। बोलने लगे कि बाबूजी गंगा मैया का जल लेकर रामेश्वरम् जाऊंगा और मैंने गंगोत्री पैदल यात्रा का ही विचार किया है। उन्हें चाय-पानी हेतु उनकी जिद्द के उपरान्त कुछ खर्च दिये और कहा कि गंगोत्री से लौटते समय मेरा आतिथ्य स्वीकार करें। दस-बारह दिन बाद अपने लोटे में गंगोत्री का जल लेकर मेरे पास आये। तीन-चार दिन ठहरे। मैंने कहा कि अब आप रामेश्वरम् जाने हेतु किराया ले लें। कितनी सरलता से बोले कि बाबूजी हम विकलांग लोगों को किराया नहीं लगता है। आप ऋषिकेश तक की बस का भाड़ा दे दें। उनको मैंने पोस्ट कार्ड दिया कि रामेश्वरम् में पहुँच कर मुझे सूचित करें। करीब एक महीना बाद वही पोस्ट कार्ड मेरे पास आया कि मैं सकुशल पहुँच गया हूँ। उनके भोजन करने का तरीका देखकर मैं चकित रह गया। दोनों कोहनी को मिलाकर रोटी एवं भात-दाल भी खा लेते थे। कहने लगे कि शुरू में असुविधा रही किन्तु अब बिल्कुल भी परेशानी नहीं होती है। प्रभु भी अंग की पूर्ति अन्य साधन से करते हैं।

साधक और सन्त सुविधा-असुविधा को नहीं देखते। उनका लक्ष्य साधना होता है। हमारे देश में शताब्दियों से ऐसे निष्पृह साधु सन्त चिरकाल से होते रहे हैं जिन्हें धन या यश की अपेक्षा नहीं रही। ऐसे ही महानजनों ने आज तक भारत को पुण्य भूमि बना रखा है और प्रेरणा देते रहे हैं।

# श्रीरामकृष्ण मिशन को गाँधी शांति पुरस्कार

नई दिल्ली, २८ सितम्बर, ९८

अहिंसक ढंग से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तन के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की वजह से वर्ष १९९८ का प्रसिद्ध गांधी शांति पुरस्कार श्रीरामकृष्ण मिशन को मिलेगा। अगले वर्ष जनवरी में भारत के राष्ट्रपति श्री के० आर० नरायणन द्वारा प्रदान किए जाने वाले इस पुरस्कार में एक करोड़ नगद रुपए तथा एक उद्धरण-पटिका होगी।

इसकी घोषणा करते हुए भारत के केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री श्री मुरली मनोहर जोशी ने कहा कि इस पुरस्कार के वर्ष १९९५ में शुरू किए जाने के बाद यह पहला अवसर है जब किसी संस्था को इसे प्रदान किया जा रहा है। डॉ० जोशी ने कहा कि महात्मा गाँधी के आदर्शों से तालमेल करते हुए मानव जीवन से दीनता को दूर करने के कार्य में मिशन की महत्वपूर्ण भूमिका को यह पुरस्कार सम्मानित करता है। गरीबों के बीच मिशन द्वारा किए गए कार्यों पर भी उन्होंने प्रकाश डाला।

५३ नामांकनों में रामकृष्ण मिशन का चयन सर्व सम्मति से हुआ।

उच्चस्तरीय अभिनिर्णायकों में भारत के प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री एम० एम० पुंछी, विपक्ष के नेता श्री शरद पवार, भूतपूर्व राष्ट्रपति आर० वेंकटरमण तथा श्रीलंका के श्री ए० ती० अरिहन्ते सम्मलित थे।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित इस मिशन की पूरे देश में १३५ शाखाएँ कार्यरत हैं।

इस पुरस्कार के सम्बन्ध में, हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली ने अपने ३० सितम्बर ९८ के सम्पादकीय अग्रलेख में निम्नोक्त उद्गार प्रकट किया।

## एक पुरस्कृत मिशन

अपने १०१वें वर्ष में श्रीरामकृष्ण मिशन को प्रसिद्ध गाँधी शांति पुरस्कार दिया जाना सर्वथा उचित है। वर्ष १९९५ से शुरू किए गए इस पुरस्कार को पहली बार किसी संस्था को प्रदान किया गया है तथा समाज से अशिक्षा, घृणा तथा गरीबी को दूर करने की अपनी प्रतिबद्धता जो कि महात्मा जी के लिए भी चिंता का विषय थी, के लिए यह संस्था अति सुयोग्य है। वास्तव में यदि स्वामी विवेकानन्द के आध्यात्मिक अन्वेषण का मार्ग समाज सेवा के माध्यम से था तो महात्मा गांधी की तलाश, भारत के गरीबों की दीनता दूर करने की राह, आध्यात्म के द्वारा थी। "मुझे कुछ पवित्र एवं निःस्वार्थी स्त्री पुरुष दो एवं मैं दुनिया को बदल दूँगा।" वर्ष १८९७ के अगस्त में बिना किसी धन के दर्जन भर संन्यासियों के साथ मिशन की स्थापना करते समय यह हुंकार स्वामी जी ने भरी थी। आज मिशन के पास मात्र एक हजार संन्यासी एवं पूरे विश्व में १३० केन्द्र हैं परन्तु ग्रामीण आदिवासी कल्याण केन्द्र, पुस्तकालय, चिकित्सालय, महाविद्यालय एवं विद्यालयों का बहुत

बढ़ा जाल सा बिछा हुआ है। और ये सब मिशन के कर्मठ कार्यकर्त्ताओं द्वारा संचालित हैं जो समाज के दलित एवं पिछड़ों को अपनी आध्यात्मिक अस्मिता के साथ-साथ समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। वेदान्त की अपनी विशिष्ट स्वर-लहरी के साथ मिशन जनता की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक शक्ति को जगाता हुआ निस्वार्थ सेवा की तरफ प्रेरित कर रहा है। मिशन आज यदि अपनी विजय की दुंदुभि बजा रहा है तो यह उसके संसाधन एवं संगठन के कारण नहीं बल्कि जनता को जाति, धर्म एवं भाषा की चारदीवारी को तोड़ कर, सेवा एवं प्रेम के पथ पर चलने के लिए प्रेरित कर सकने की अपनी क्षमता की वजह से।

साभार—हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली
अनुवादक—विमल कान्त प्रसाद
भारतीय स्टेट बैंक, सिधवलिया (बिहार)

# श्रीरामकृष्ण अद्‌भुतानन्द आश्रम, छपरा में निःशुल्क महिला चिकित्सा का शुभारंभ

छपरा, २ अक्टूबर ९८

आज गाँधी जयंती के पावन अवसर पर श्रीरामकृष्ण अद्‌भुतानन्द आश्रम में महिला चिकित्सा सेवा का श्रो गणेश हुआ। उद्‌घाटन भाषण में सचिव डा० केदार नाथ लाभ ने हर्ष व्यक्त करते हुए इस कार्य को आश्रम में एक नये अध्याय की शुरूआत कही। उन्होंने श्रीरामकृष्ण का उल्लेख करते हुए कहा कि हम किसी पर दया नहीं कर सकते, हम दया करने वाले कौन हैं? हम केवल सेवा कर सकते हैं। डॉ० लाभ ने शिव भाव से जीव की सेवा की भी बात कही। उन्होंने ठाकुर एवं श्रीमाँ के जीवन की कुछ घटनाओं का उल्लेख किया जब उन दोनों ने सेवा कार्य के महत्व को प्रकाशित किया था। उन्होंने कहा "इस आश्रम में पहले से होमियोपैथी एवं एलोपैथी चिकित्सा के लिए एक-एक पुरुष चिकित्सक की व्यवस्था थी परन्तु मेरे मन में खटक सी थी कि मातृस्वरूपा नारियों की कैसे सेवा की जाए। और आज ठाकुर की कृपा से यह कार्य सम्पन्न हो गया है।"

धन्यवाद ज्ञापन करते हुए भारतीय स्टेट बैंक सिधवलिया के श्री बिमलकांत प्रसाद ने छपरा की प्रसिद्ध महिला चिकित्सक डा विनोद कुमारी शर्मा का आभार स्वीकार किया जिन्होंने आश्रम में सेवा भाव से इस कार्य में अपना योगदान करना स्वीकार किया है।

यह ध्यातव्य है कि स्वामी अखण्डानन्दजी के जन्मदिवस पर २२ सितम्बर १९९८ को आश्रम में एलोपैथी चिकित्सा का श्रीगणेश किया गया जिसका उद्‌घाटन छपरे के प्रसिद्ध नेत्र चिकित्सक डॉ० नागेश्वर प्रसाद मिश्र ने किया जो इस आश्रम के उपाध्यक्ष भी हैं। डॉ० एस० एम० दास ने मानदेय रहित सेवा करने की स्वीकृति प्रदान की। □

# एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण संस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें निःशुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबंधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

-"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुंजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक

**स्वामी सुवीरानन्द**

सचिव

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

**नोट** :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।

2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.-१४-८३
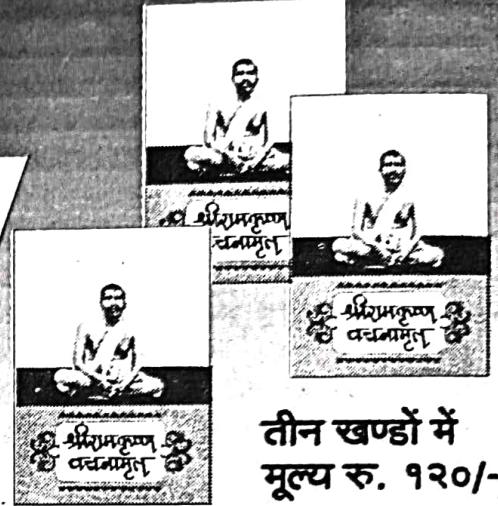


श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।